

गीता रथ ^{वीक्षण} न

सम्पादक
हरीश भादानी
पुनम वर्मा



सूर्य प्रकाशन मन्दिर
वीक्षण

C वातायन प्रकाशन

प्रथम सूस्वरण

पृष्ठ्य : तीन रुपये

प्रकाशक

वातायन प्रकाशन

५, बागा विविश्य

बीकानेर

मुख्य बितरक

सूय प्रकाशन मंदिर

नेहरू मार्ग बीकानेर

मुद्रक

एन्ड्रुकेसनस प्रेस

बीकानेर

अनुक्रम

सम्पादकीय

गीत

बंधमौलि उपपाध्याय; कीशल मिश्र-१, कन्हैयालाल शेट्टिया-२, बंशल-
३, रामेश्वरकांत खडेलवाल 'तद्वच'-४, माखनलाल बतुखेरी-५,
लाल भाटिवाल विश्वनाथ-६, प्रभुप्रसाद धीवास्तव-७, श्रीकांत
बोस्ली-८, छविनाथ मिश्र 'पापल'-९, रघुनाथ प्रसाद घोष-१०,
विरिधर घोषवाल, धंकरलाल माहेश्वरी-११, सुरेश्वर उपाध्याय, डॉ०
रघुनाथलाल मेघ-१२, मनोरञ्जन संघार, डॉ० रवीन्द्र भ्रमर-१३,
प्रकाश परिबल; नरेश बस्तेना-१४, शम्भु; सूर्यमानु मुन्ना-१५,
त्रिलोक प्रसाद-१६, भारत भूषण-१७, बीर बस्तेना-१८, मङ्गल
बस्तेना; श्रीपोपाल अन्वर्थ-१९, सिधाराम शरण प्रसाद मधुसूदन
ठाह्रा-२०, राधानन्द हिमानी-२१, रचनीत निर्मलकुमार
धीवास्तव-२२, हरीश नाशानी-२३

गद्य-गीत

शंभुवपाल लक्ष्मेना भबरमल तिघो-२४, भंडकजोर; बहीप्रसाद
बंभोली-२५, सीता भटनावर, प्रो० अतिर-२६, हरीश निगम
(मालवी)-२७ कल्याणसिंह राजावत-२८, जमन (राजस्थानी
गीत)-२९ सुवामा, नारायणवत धीमाली (राजस्थानी गद्य-गीत)
-३०

निबन्ध-परिचर्चा

डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित-३१, चन्द्रमौलि उपाध्याय, प्रकाश परिमल,
सरजंग गर्द-३६ सांतिनगर पारल-५०, डा० रामेदवरलाल
अडिलवाल 'तत्त्व'-५४, राजानंद, उपाध्याय सुरेश डा० पवनचंद्रमार
विष-५९

मूल्यांकन

पुनन बईया-७४ राजानंद-८१ हरीश भादनी-८७, प्रकाश परिमल
-८९, सीता भटनावर-९४, रविम-९५, सरल-९६, दुर्गा माहेश्वरी
-९७

सम्पादकीय

कृताकार गति (बुल गति) में भ्रूज कड़ी बहुत सहायक होती है । तात्पर्य यह कि गीत में बार बार मुसुंरे के दोहराये जाने से जहाँ से गीत प्रारम्भ होता है वहीं घात होता है—जहाँ मन्त होना है वहीं से प्रारम्भ होता है और इससे ही गीत का लय अनन्त का प्रतीक बन जाता है । मत्स्युत्पन्न उत्कृष्ट गीत में सुनने वाले को देना भ्रम होना चाहिए कि इस गीत में चिन्ता ही नहीं है—जैसे लघु जब बेग से चलता है तो लगता है कि लड़ा है ऐसी ही गति गीत में होनी चाहिए जो गति-बेग और स्थिरता दोनों को धरने । नाद और स्वर्य गीत में स्विप्न होने चाहिए । थोटा नाद के साथ ही बिना उल्लेख स्वर्य को जाने उसका अनुभव वा नेता है । गीत के लिए उल्लेख स्वर्य समझना उतना जरूरी नहीं है जितना कि उल्लेख नाद से

अनुसृति प्राप्त करना । तावभोमिच्छता सिद्धाणा और सोचना इतले
 अनुसृति नहीं मातो है और केवल समझना हो पीत नहीं है । पीत
 को अनुसृति बहिक है—असे लोह-नृत्य में नृत्य करने वाले और
 इसने वाले दोनों बहिक तन्मयता पाते हैं यह गीत का विशेष गुण
 है । प्रागैतिहासिक युग में पूर्वख का प्रतीक—शुत होता था और
 उसकी साधना करते-करते मनुष्य पूर्वख की अनुसृति पा लेता था
 उसी प्रकार पीत भी एक तरह की अस्मिन्मुक्त साधना है जिसमें
 शुतपति प्रथम भावश्यकता है इतलिये छन्द और लय की आवश्यकता
 पड़ती है । लय भावों का आगरण करती है जागृत भावों को पकड़
 कर रखती है—असे लहरों से गरी का सञ्चालन यतिगित भी रहता
 है और स्थायी भी रहता है । छन्द लय का Patter बनाता है
 जैसे मुँह से उच्चरित शब्द भी लय है, पर मसम्बन्ध है अतः बहु छन्द
 नहीं है और छन्द नहीं है तो लय को स्थायित्व और विशेषता नहीं
 मिलती । लय सामान्य और विशेष दोनों है । छन्द केवल सामान्यता
 को रखता है लय अपनी विशिष्टता को किधा दोनों को रखती है ।

कवि का मस्त स्तस उसका मन प्राण जब धनीमृत
 भावनाओं से स्पन्दित हो कर दरों की स्वाभाविक लय यति में स्वतः
 निवृत्त होता चलता है तो गीत मरना आकार से लेता है । भावना
 की धनीमृतता मरन धर्म परिवार में रस से स्नात हो कल्पना के
 ततरंगी भावधरों से सज्जित हो स्वरों का नर्तन कर उठती है ।
 उसमें श्रेयधीयता को धर्म स्थिति होती है यही गीत का सफलतम
 रूप होता है ।

हिन्दी गीत को ध्रुव बतमान रूप में पहुँचाने के लिए कई
 मन्त्रिज्ने लय बननी पड़ी हैं । युग के अनुसार भाव बोध बदलते गए ।
 गीत की धरती प्रथम अवस्था में उसने लिये कथन योग्यता ही
 आवश्यकता होगी थी वाच्यत्व की आवश्यकता नहीं थी । फिर धीरे
 धीरे सामूहिक भावनाओं को स्थायित्व जिताने और गीत हृदय की रस

मयठा से रंजना जाता मया ।

एक अवस्था यह भी आयी जबकि काव्य मात्र ऐतहासिक और अलंकरण मया और हृदय से दूर हटता गया । फिर राष्ट्रीयता से लोक-मानस को रंजित करता हुआ केवल सुधारकारी भाषी ही हीने लगा । इसके फल स्वरूप जो रूप हमारे सामने आया उसमें आत्मानुभूति की तीव्रता और प्रगोतात्मकता का समन्वय तो अभाव्य हुआ लेकिन उसमें वीति-नीरव्य नहीं था, जो गीत-कविता के लिए काव्य है । आत्मानुभूति लोक-मुलक और उसकी व्यापकता सहज होनी चाहिए । गीत केवल वैयक्तिक अन्तरगत से उच्छ्वासित भावनाओं के जमाबी मीत ही नहीं हैं ।

नई कविता के साथ नवीन छन्द, नई ध्वन्यात्मकता, नई उपमाएं, अभिव्यक्ति की नई विधा, नई अर्थ-शक्ति इन सब का समा-वेद्य मिला । नई कविता के साथ-साथ गीत के स्वाभाविक रूप में एक परिवर्तन आया और उपमाओं की दृष्टि से उसी प्रकार के नवीन प्रयास होने लगे । ये नवगीत अपनी सम्प्रेषणीयता में कुछ रहे और अत्यधिक विम्व विधान के कारण प्रमावात्क अभिन्न रहे । इन पीढ़ी में लक्ष्य कर देने की दृष्टि चाहे न हो परंतु अपनी प्रमावो-त्पादकता के कारण अवेक्षित मार्गों को तरङ्गित करने में समर्थ हो जाती हैं । इन्हीं गीतों के साथ साथ कुछ ऐसे गीत भी मिले गए हैं जो अपनी आत्मिकता के कारण मीठे बने हैं उनमें मेयता का प्राचुर्य है, भावावरण प्राग्ध स्तुति का है, पर ये कुछ होकर क्षेत्रीय सम्प्रेषणी यता लिये हुए हैं । नवीन नाच नाच की बात दूर जगह कट्टी जाती है—उससे वीत भी अछूता नहीं रह सकता, पर नवीन माध-बोध को कुछ विम्वों में बघालिक कर अत्यधिक बीडिच्छता को माध्यम बना लेना ही मीत नहीं है । भावात्मक कविता के प्रति लोचनीयन प्राह्य का दोस लगा कर जो एक बुद्धिबारी प्रक्रिया सामने है उसमें इस परम्परा के बर को सापद टेस पहुंचे किन्तु यह निर्विबाध है कि

संवेगों का आकुल स्पन्दन नश्वर नहीं होगा। अतः भाषारमक रचनाओं का अधिक्य भी आशान्वित है।

प्रस्तुत 'संग्रह' में संकलित गीत दो दृष्टि को सामने लायेंगे। प्रथम कि ये गीतकार इतने अधिक मिलने लगे कि बहुचर्चित और प्रीड़ता प्राप्त नहीं है। इनमें नयी अंकुरित पीढ़ी की काव्य साधना उत्तकी अंग्रेज और अमिष्यति, उत्तकी चेतना और सजगता स्पष्ट रूप से सामने आजायेगी। हमारा प्रयास रहा है कि हम ऐसे ही गीतों को प्रस्तुत करे जिनके सर्जकों में सन्नाहनाएं निहित हैं जिनकी अमिष्यतियां नवीन हैं, सजगता है और रफिग्रेक भी है। इन गीतों के अन्वेषण से अधिक्य गीत का अनागत रूप भी संकेत देना और इत पारना को भी पुष्ट करेगा कि अत्यधिक बौद्धिकता के हिमायती जो कहते हैं कि गीत मृत प्रायः है या मृतावस्था में है जो महान् सत्य को अन्वेषण करना चाहते हैं साथ ही इत विद्या की पूर्ण जानकारी एवं सप्रह की पूर्णता के लिये हमने समीक्षा के अंतर्गत साहित्य की इस धारा पर निबन्ध भी दिये हैं जिससे इत विद्या का सम्पूर्ण रूप पाठक प्राप्त कर सकें।

—सम्पादक

संज्ञमौलि उपाध्याय
मुझे जीने की साथ

कौशल मिश्र
नया गीत पाने दो

●
हरे भरे बेट, उड़े बादल की छाँह
मुझे जीने की साथ !

विमल इन्द्रधनुषी इन क्षितिजों के माथ
स्पृहा वयो सगा सभी बवलों के हाथ,
सुखा-सुखा मन, पूनर पछुमा के साथ
यह पसीने की साथ !

हरियाये पीछे, यह कबरायी पीर
गये हुए दिन सौंटे छासों के धीर,
बेतों में बूबे पदचिन्हों के नीर
मुझे पीने की साथ !

कट्टे सीमान्तों की से-सेकर टोह
हर पकती बासी में बागे का छोह
प्रहरों की ब्योढ़ी से बाहर ब्यामोह—
ब्यया सोने की साथ !

●
माने दो,
धीर हवा माने दो ।
रह रह भवराता मन ।
बसो हुई एक शुभम ॥

छाने दो
धीर घटा छाने दो ।
रोने से क्या मिसता ।
भाव नहीं, यों भरता ॥

जाने दो,
घुटन, दूर जाने दो
मीसम है गाने का ।
सबको बहसाने का ॥

पाने दो,
नया गीत पाने दो
माने दो,
धीर हवा माने दो

●

मति का है उरकपं यही वह
बन बिराम सी दीसे ।

स्वरित घूमता बरु हगों को
ठहरा सा सगठा है
किन्तु क्रिया की निष्क्रियता में
परिणति ही क्षमता है,

मसल रहेंगे मसल, सया यदि
बन न धाम सी दीसे ।

मृत्यु मसंपति नहीं, सहज वह
जीवन की संगति है
रति का मूस स्वभाव, पूर्ण हो
बन जाती फिर मति है,

वही साधना परम स्वयं जो
बिगठ काम सी दीसे ।

कर्ता बनता सिद्ध कर्म ही
जब भकर्म बमता है,
भुक्ति नहीं कुछ धीर मात्र वह
प्रज्ञा की चिरता है

महम भावना वही महत् है
जो प्रणाम सी दीसे ।

जानकर अनजान बनता हूँ

मगर मैं हूँ कि सब कुछ जानकर अनजान बनता हूँ ।

मटकते मोह को छाँहों मरी उस्ती हवाओं में
 सचो तक गीत गाये जा रहा हूँ मग्न भाषा के
 समेटे हो समेटे प्राण मैं बसती सिखाओं को
 कभी मुड़कर न पीछे देखता मैं जब विपासा के
 कहीं कोई अज्ञानक भी जठे फिर से कभी फिर से
 प्रभो तक तो मरा सपना न मैंने एक दफनाया
 लिए किसनी अबोसी बोसती साँसें डहे मन की
 तुम्हारे बन्द घर की प्रसना करता बसा भाषा
 मगर मैं हूँ कि सब कुछ जानकर अनजान बनता हूँ ।

कहाँ का अज्ञानभी सुब बूझने मुझको नहीं देता
 वही बाँधें पुरानी रोज कोई क्यों सुना चाहे !
 वही पहली कहानी दूर से आवाज देने की
 न जब मजदीक माने दें किसी की रोकती बाँहें !
 कहीं हूँ घूट वह जो हर पक्षी भीबित मुझे रखतो
 न जाने क्यों कसेजा बँधनाओं से नहीं पकता
 न जाने कौन अनजानी प्रसंभव बात होनी है
 कि मैं बेताबियाँ अपनी कभी कहते नहीं पकता ।
 मगर मैं हूँ कि सब कुछ जानकर अनजान बनता हूँ ।

कहा करता प्रकृति अनविद्ये बेदर्द पत्थर से
 मुझे देकर प्रकृति प्रसं तु मतिवान बन जाता
 पटल निष्पन्न चरणों पर चढ़ाए फिर समपित को
 भगामी कुछ क्षणों के आस्ते भगवान बन जाता,
 कभी कम्पित हुमा है बग्न पक्षी की पुकारों से
 अवेरे की हृदय पर बसकता बाँध का पत्थर
 कभी हीरान हीरखी के तरसते टूटते वम से
 पक्षीबा है कहीं मृग-बस किसी महभूमि में कण भर !
 मगर मैं हूँ कि सब कुछ जानकर अनजान बनता हूँ ।



उतरा मेरा प्रक्षर-प्रक्षर

जब गाया ध्यान तुम्हारा घर—

पंचम में घरती पहक उठी, सौरभ से महक उठा घम्बर !

जब गाया ध्यान तुम्हारा घर !

तुमको मैंने जिस दिन देखा—

अनुरागवती है मधु मेखा !

भाया ज्यों अगहन-गंगा पर पूनम के पश्चि का बिम्ब उठर !

रस-धार बही, झूल गया गसा,

उपयुक्त सुन्द स्वयमेव इसा,

पश्चि-किरणों से चित्रित जैसे मीठे बस का निर्मल निम्बर !

ये मयन हुए धिकने धिकने,

ये प्राण हुए मकरन्द-सने,

कानों में अनहद नाद गुँबा पसकों पर उतरे स्वप्न प्रसर !

हा गई कल्पना-सता हरी,

घुस गई स्वरोँ में मधु मिसरी,

स्वर रोम रोम से यह फूटा— जग है सुन्दर, जग है सुन्दर !

तुम से प्रेरित बौ मी यो कृति—

उसमें यी भावों की प्रभिति !

छंदों में गति, पद में संगति आ मई गीत में सहज-मुसर !

पाटल-पंखुरियों पर उज्ज्वल—

हिम कणिकाओं सा शुभ्र सजल

सीपी में मोती-सा डल-डल, उतरा मेरा प्रक्षर प्रक्षर !

सुकुमार रत्न की रेखा से—

पन चित्रित हो उठता जैसे—

तुम जिन गीतों में झँक उठीं बस पीत बहो ये बिर सुन्दर !

जब गाया ध्यान तुम्हारा घर—

पंचम में घरती पहक उठी, सौरभ से महक उठा घम्बर !

जब गाया ध्यान तुम्हारा घर !

तुम चुप चुप भा जाना साथी

तुम चुप चुप भा जाना साथी

गिरिशिखरों को मुका मुका कर
प्राणों में मनसूवे भर कर
प्राणों को सहसाना साथी !
तुम चुप चुप भा जाना साथी !

मम के मम पतन पर क्षण क्षण
मंगुसियाँ दिखसाना साथी
काँधों तक बढ़ बढ़ भाओ तब
इतना बोरु उठाना साथी !

दिन में किरणों भरण घुसाना
रातों में मुस्काना साथी !
तुम चुप चुप भा जाना साथी !

बिजसी गिरे कि वर्षा उतरे
या कस कर बाढ़ा परिये
तुम होसक की बापों पर उठ
रोब कबसियाँ गाना साथी

हरी फसल जब जब बस छाये
सड़े सड़े इतराना साथी
नयनों के सीनों में साकर
यह भर-झार बसाना साथी !

तुम चुप चुप भा जाना साथी !

घोर परिभाषा नहीं कुछ, सिर्फ यह है प्यार
चाँद छूने बसा कोई, चुन लिए प्रंगार ।

कसमसा कर सफ़मता सा एक पारावार
दर्द है इस पार जिसके दर्द है उस पार,
भाव अन्तर में, अक्षर पर सिर्फ हाहाकार ।

चाँद छूने बसा कोई
कल्पनाओं में लिसे से इन्द्रधनुषी रंग
सोचती आकाश-कुसुमों को असीर उमंग,
बोव में जिनके लकी है धून्य की दीवार ।

चाँद छूने बसा कोई ...
दूटता तारा मगर ज्यों प्रतिग की रेखा,
बल रहा सा प्रथ, जिसमें प्राण का सेसा,
कुछ नहीं है प्यार लेकिन बहुत कुछ है प्यार ।
चाँद छूने बसा कोई, चुन लिये प्रंगार ...
घोर परिभाषा नहीं कुछ । ●

विरवनाथ

सजाओ यूँ न दोफासी

समेटो यूँ न घलकों को गुसाबो भोर की बाली ।
सजाये चाँद में ज्यों बादलों की घोट लो करसो
सिमट कर रश्मियों में बाहुओं में चाँदनी भर ली,
उपा को डक रहा हो ज्यों सबेरे का धुँपसका सा
उमड़ते घासुभ में ज्यों नयन को मोलिया डकसी,

हटाओ लो ज़रा घूँघट कु वारे नाज की बाली ।
जरा सा भोर मुस्का बो ये कसियाँ फूल बन जायें
महक जाये जमन सारा ज़रा मीसम बदल जायें,
कसम उस एक सपने की जो रातों को जगाता है
नज़र भर देल लो यह पल न जाने छोट कब जायें ?

सरज कर, भूम कर मचसो सजाओ यूँ न दोफासी ।
समेटो यूँ न घलकों को कु वारे नाज की बाली ।
सरज कर, भूमकर मचसो गुसाबो भोर की बाली,
हटाओ लो ज़रा घूँघट, सजाओ यूँ न दोफासी । ●

कोरों के मारे है बुरा हास बस्ती का,
उस पर भी भासम है मस्ती का,
बैहोयी से हूँ प्रवरज की बात नहीं।
प्राण सगे बिना हाय कटती है रात नहीं!

जहाँ-तहाँ बिसरे हैं सारे प्रनमोस रतन,
तन उधार सोयी है गहनों से सदी दुस्मन
बरखाबों पर साँकस देने की बात नहीं,
सन्नाटा खतरे का खोतक है ध्यान नहीं

घार का पहलवा बिस्ताता है फाड़ गसा
कोन सुनेपा उसकी भाज मसा,
रोज-रोज होती है रस की बरसात नहीं।
प्राण सगे बिना हाय, कटती है रात नहीं।

दिन भर है बात चुभे घूर्नों के प्रपरों पर,
एक दद बह गया समोरण की सहरोँ पर,
मधुमों के दोहरे यहाँ प्रमसर प्राते हैं,
पक्षों के हाय बिस्ता, सोटियाँ बजाते हैं

सुन्दरता नगी है, बड़ी बेहवाई है,
साज यहाँ किसको कब प्राई है,
कच्ची है कमी, प्रत खुसते हैं पाठ नहीं,
प्राण सगे बिना हाय कटती है रात नहीं।

भेतमता का सूरज उतराया कई बार,
कुत्सामों के मेघों में पी सी ज्योति-भार
मन तो है दास कुछ जहेठी इच्छामों का,
किघर पड़े ठोक नहीं उस्ता रख पावों का,

प्राये क्योंकर बिबेक मिमती दुतकार यहाँ
उपदेसक गये सभी हार यहाँ
सपनों में कमी सुनी है सप की बात नहीं,
प्राण सगे बिना हाय कटती है रात नहीं।

भाज मन शबनम हुआ है
वद शायद कम हुआ है ।

फूल की श्रुति छा गई है
स्वयं में गति भा गई है
हिम पिघल बस बन गया है
सूचना असफल हुआ है,

बात करने में नशा है
हौस की हलकी दशा है
इस तरफ श्रुति, उस तरफ तुम
बब रहेगा कौन गुमसुम,

एक भुङ्कती बस ने
प्राणीय मुझको भी दिया है ।
भाज मन शबनम हुआ है
वद शायद कम हुआ है ।

प्यार की माझुक गली है
इन दिनों समती भसी है,

पाँव तक सिपटे सपन है
मृत्यु में इतने मगन है,
घायल से पिक का निर्मंत्रण
भा रहा श्रुति-पत्रिका बन

हम वहीं हो जा रहे हैं
ब्यब पोड़े गा रहे हैं,
कुछ नहीं करने का मन है
ब्यस्तता इतनी सपन है

भाज रुक कर रह गया है
स्नेह पाकर भुङ्क गया है
एक घरसे बाहर मैंने
बैठ कर पानी पिया है ।

भाज मन शबनम हुआ
वद शायद कम हुआ है

रोशनी के पाँव बपि,
प्यार पथ की छाँव नापे,
इतमन्धी याद छिद्रुरो, गीत पथराने सगे हैं

●
घूप के आवेश का हर तन्तु तम का मुखापेक्षी !
टूटते परिवेश की हर स्वर किरण बीमार-सी है
रूप की हर पंखुड़ी पर युगलयो जमाद उभरा
बेतना आकाश पुन्नी बह रही मीनार सी है

मजगरी आयाम सर के
मोस सिमटे घाट भर के
बुलबुलें हो गई बहरी फूस पथराने सगे हैं !

●
हर खँबोरी प्रायना का एक भी प्रखर छन्दित
संबिभाएँ नाथ के बिश्वास को स्वीकारती है
नीलमी सपने क्रिसो के रोज गुमसुम मोट प्रात
मुनमुनाती ब्योडियाँ हर सँम को बुलकारती हैं

मूनदूषी आकुस प्रतीक्षा
फिर रही देतो परीक्षा
सगन की यात्रा अपूरी, नयन बधराने सगे हैं !

●
प्राण को बुलरा रही है, कामना वारुव गंधो
आफरानी घाटियों में कास-कुहरा टिक गया है
फरफराते पंख की धनगिन कभाएँ भोखती हैं
बेदना के हाथ हर रेशा सुनहरा बिक गया है

मौस देतो है फुनीली
धमन को सहमी कपोती
तय हुई दूरी न पूरो, बाज मंढराने सगे हैं !

मनचीली सँक मिसे न मिसे
बोझिल भिनसार नहीं देना,
सौपस्य तुम्हें इन सँसों की निर्बीव गुबार नहीं देना ।
सपनों की सोनाघाटो में
सार्धों के बिरवे घमिम पसे
बुप-बुप मन के क्रिस कोने में
बीरों को भाण-सुवास मिसे
बीरों तो बीरों टहनो पर
फुनमी सक मधु का रेस-वेस
मधुवन मधु सने मिसे न मिसे, उम्मम पतम्हार नहीं देना ।
बोझिल भिनसार नहीं देना ।

चम्दा मे खोई बँत यहाँ
सोटो कितने दिन सोमकिरण
छज्जे पर पाखी डोस गये
छिन्को भेठनता में सिहरन
हर सहर तृप्ति की पतुनाई
हर दौब उन्न को उतराई
पूनम की डोर मिसे न मिसे, धौधियार पसार नहीं देना ।
बोझिल भिनसार नहीं देना ॥

जीवन के उफने ज्वारों में
मन का सुगना रह गया ठगा
बिस खोरा मान-मनोती की
यह सबस्य मनुगहा यका सगा
हर मीसम है यों गु पा हुमा
हर द्वार पुहार तगायो है,
सुबुमार बनार मिसे न मिसे बोधी मरुघार नहीं देना ।
बोझिल भिनसार नहीं देना ॥

गिरिधर गोपाळ
सुधि हसी फिर भायो

भाज कहीं खतार नयन में
सयाम बदरिया छायो ॥

मंगल तिलक बनी मस्तक पर
चिन्तामों की रेखा
एक सहर घो गयो पुलिन से
वह बिषमय विधि सेखा

नहरे हूरी व्यथा समारों की
भर गयो दरारें
भाज लंडहरों की नगरो में
यज-प्रिया मुस्काई ।

●
वी को देखो तो धिरो को जालो है !
हमने कुछ ऐसी ही विपदाएँ पाली है !

बदकर-सा भरमोसा फिरसा पवमान यहाँ
पगसामी ऐसी है छू देता जहाँ तहाँ,
स्वर बन कर बज उठता वो कुछ भी जालो है !
हमने कुछ ऐसी ही विपदाएँ पाली है !

स्वर में छिप बैठा वो बड़मानस का गायन,
फैसाई बाहों-सा करता है भावाहन
पस्फुट मनुहारों में चाहों की सासो है !
हमने कुछ ऐसी ही विपदाएँ पाली है !

भाव बन गये फूस पग घुमे घूस
नसत से घमके
दाग चांद के टुकड़ों से
भांसू मुछाबस दमके

सगता पास कहीं फिर महक उठो
केसर की क्यारी
रोम रोम में भाज वेह भे
दीपावली सजायो ।

द्वारे भ्रमर टोक
चित्र दीवारों पर प्रकित कर
मन के सहलाने तक
फिरणें पहुँची रनभुन पग पर

बाग उठो सारों की
बरसों सोई जबकुमारी
हर माहट पर सांस सेज से
देहरी तक हो भायो ।

शंकरलाळ माहेश्वरी
बदो को बेसी लो



सूरज की फेंकी
 चुरियां न मोरें
 दिन फूले भरे ना विरीस
 कूपा के मगरे
 सजरिया के झोरे
 मैया की फसती बसोत
 खनक की मोन एहो
 पवन जो होते बहो ।

पोषों में दुबकी
 झुरमुट में भटकी
 सठनी चिरैया की टेर
 विरहिन की धाँसों में
 पावर कटना ।
 न माए पिया भई धवेर
 —कि टुक बुससात कहां
 पवन भी होते बहो ।

बगुना की मोरा की
 कसैगी न सरखे
 न टूटे सहरिया की वेह
 धौगन की सधिया की
 सीरक न डोसे
 न बिसरे सरैया की गेह
 गगन जो होते गहो
 पवन जो होते बहो ।

धेतों के झूठ
 सन बिछिए बजैये
 फसियों की तड़बेगो वेह
 माह की मावट
 रोए चुमेगे
 कपिया सबकीरा वेह
 —कि धीबन भान गहो
 पवन जो होते बहो ।

संभरी-संभरी नहीं मिसो छाँब, री
 कुट्टक रही कोकिला झँबरी सँबरी

संकुच मृदुती के पसाधों पर झँक गा
 चेतों के मृकृत सास, सहरविषु छँक म
 वषों के हरसिमार गिरे गिरे नधे-न
 निभर जो बहे-गए-गए-गए-गए-गए

रसेश्वर ने धरो रिक्त संघ-संघ गा
 बिसर गई हारों की पानुरो-पानुरी

धनजाने कसियों धौं धलियों को भौं
 कोमल मुदुचैत्रवाह भटके भकभोर ।
 पीप्येय ज्ञान खेप्ट तर्कों में चसभ
 तर्क खेप्ट धंतर की धामा में सुसभ ।

बस की नहीं सुनती मुग्ध मधुच्छतु,
 बाँ,
 टूँठों में भटक रही प्राणों की बांसुरी

जा पकीं प्र भ्रमर
भूसे हमारे द्वार

इन्द्रधनु
भूसे हमारे द्वार
बन्दनवार !

मिला पास-बोगन की
हरतिगार का सुहाय
भङ्कृत मन श्रीए-शार
स्वप्न बने गं ब राम
पो फटी डयरिया पर
सौंस के घिरोदे में प्राण का पियरवा
गाड़े की ठिकुरो हुई रात-सी उमरिया पर
फंस गई सुधियों के कृहरे की चादर ।

तारों के फूल धुने
हो गई निहास भोर
म सुभाये योवन पर
बोस कसैं सब सञोर
दश जुमाती वाली
संदसी दुसाई से मनकुई किरण कसी
मनब्याही प्रोड़ा-सी हरियाली पर बोसी
। करता है मोल देस मूरज सोदापर ।

पिरणय का प्रथम मिसन
'गुहून-सी ठगी-ठगी :
पूनों की पल्लकों में
बौदनिया रात बगी
नींद भर गई उड़ान
देखते ही देखते सौंस के भरोसे
प्रात भ्रूख से भाया मोस का विचारदान
हुवा को हिरनियों के हाथ सवी भ्रूँभर ।

फूँक दें रन-वन जगत की रीत का,
खगाएँ नगदन नवेसो प्रोत का,
सिसे महके
दो हृदय का प्यार
फूस बहार !

बोड़ सैं बिश्वास मन के पास पा,
प्राण बाँधैं प्राण स्नेह सता उगा,
भरे निमस
भाव पास भार
मधु बीधार !

सुबह बाने मोर दिन भर कोकिला
हर घड़ी हो राग का सावन सिसा
बगे जीवन की
मधुर भ्रनकार
तार सितार !

एक तन मन एक वचन एक हो
एक वपण में सजाएँ दो,
परस्पर
करते रहैं भूँभार
मृकशाहार !

इन्द्रधनु
भूसे हमारे द्वार
बन्दनवार !!

प्रकाश परिमल
 सिल्कन विस्तार

सहज समर्पित है
 तुमको
 हरबार

हृदय की सुरमित-स्मृतियों का
 सिल्कन बिस्तार,
 सँभारी योवन की निभियों का
 सीमित सार,
 मुकुम्भित

मोस के शिकारों का
 नियमित खबार,

मखानक प्राप्त
 किसी पसास के बन में
 बस संदल से
 भरे पावन प्यार !

छूट गये वृत्त टूट गई कसमें ।
 तुम्हें देख साक्षा पसास-बन दहके मस मसमें ।

संकोचों का घट हावों से —
 छूट गया टूट गया ।
 एक प्रबोसा लाग मन का
 बबारापन मूट गया ।

मनगिनती मीठे परिषय अकुराये भापस में ।

बातापन से झँक, किसी
 अग्नि की एक किरन ।
 रातों रात बिमाड़ गई
 सपनों का पास चलन ।

अजुरी भर बस में पहाड़ सी डूब गई रस्में ।

छूट गये वृत्त, टूट गई कसमें ।
 तुम्हें देख साक्षा पसास-बन दहके मस मसमें ।

धो गूँधी हवा !
 पकी दोपहरी !
 धो पीलो धाम !
 मुझे मत बुला !

सूर्यभानु शुष्क
 सिधपी हयूसे में

बावै के साथ इस हवा के
 धायद मधुमास कहीं सिस जाये !
 मैं जिसकी पक्ष छोड़ूँ
 ऐसा भी फूल कहीं सिस जाये !

दुपहर का सूनापन जैसे बोगी का मन ।
 मन जैसे भटक रहा धनबारा, धन-धन ॥

तू भी धुप रह
 लुप्ता बावरा !
 धौपस मत बाम
 मुझे मत हसा !

धूप ने रचाए है हाथ धौप बोसे
 सग्नाटे को है कसम कोई कुछ तो बोसे,
 बिड़ियों ने मो क्या सब,
 रख दिए हैं पीठि रेहन ?

भट्टहास करता सग्नाटा
 कहते हैं एक फसस कट गई ।
 धायद धाकाध बड़ा हो
 माटी तो एक पत घट गई !

धुँधलो पबती जाती है यादों की मेंहदी,
 धौसैं ज्यों धापप्रस्त हों सूखी हुई नदी,
 कोई तो तोड़े प्रब सामोशी का दर्पन !

कुछ भी मत कह
 पुरवा सौवरी !
 मैं हूँ बदनाम

टूट-टूट जाती है हरी मुस्कराहटें
 फूलों के मुसबों पर उग रही है ससबरे
 हम उदास हुए धौर सत्तम हो गया बचपन

पगल है बुसा !
 मुझे मत हसा !
 मत बुसा !

हर कण है वेकरार वक्त के बयूसे
 केव होके रह गई है जिदपी हयूसे'
 हर बसत है संबीवा, हर नजर में है तब ५७

ऐसा क्या सम्मोहन जिससे —
कस जाते प्राणों के बंधन ।
मेरे रोम रोम में तुमने
जाने कैसी प्यास बघाई
सूखे पत्थरों को सापारी
पाँसू से हो गई सम्राई

त्रिकोणी प्रसाद
झुके झुके धो धोते कंगन

मिसना - बुलना भी जीवन में
मेरे लिए एक कमबोरी
शिशुओं की ऊँचाई कृता
मेरे स्नेहित मन की खोरी
ऐसा भी तो क्या धरमाना—
झुके - झुके आ देखे कंगन ।

पग की पाँचपाँचों के डर से
चेहरे पर छा गई उदासी
नदिया कब रुकती बहने से
जो मेरे मन के विदवासी

उर को धाय कहीं छुपती है —
बाहे रोज सगापों चन्दन ।

एक बिवशता भरी जिन्दगी
कब तक कोई भी सकता है
केवल सपनीसी किरणों को
कब तक कोई भी सकता है

बूद - बूद रीती गागरिया —
धना का हो सका न बंधन ।

ऐसी क्या पदपाव कि जिससे—
घहक उठे मेरा नंदन - वन ।

धरमीनी पसकों के । नीचे
धावेयों का एक प्रसंजन
मौन समर्पण की भाषा में
साँठों का होता परिवर्णण

माये की बिदिया मुस्काती —
करने पीड़ा का अभिनयन ।

तू मम मनमना न कर

तू मम मनमना न कर अपना इसमें कुछ दोष नहीं तेरा
भरती के काव्य पर मेरी तस्वीर धबूरी रहनी थी ।

रेते पर सिंहे नाम जैसा मुझको वो धड़ी उभरना या
मसयामिस के बहकामे से बस एक प्रमाद निखरना या !
गूँधे के मनोभाव जैसे वाणी स्वोकार न कर पाये
ऐसे ही मेरा हृदय कुसुम असमपिठ सूख बिखरना या !
कोई प्यासा मरता जैसे बस के प्रभाव में बिय पी से
मेरे जीवन में भी कोई ऐसी मजबूरी रहनी थी !!

इच्छामों से समते बिरसे सब के सब सफल नहीं होते
सब कहीं सहर के झूठे में धरणारे कमल नहीं होते !
माधो का अंतर नहीं मगर अंतर तो रेखाओं का है
हरएक दोष के हँसने को शोषे के महल नहीं होते !
दर्पण में परछाईं जैसे वीसे तो पर धनछुई रहे
सारे सुख सौरभ की मुझसे ऐसी ही दूरी रहनी थी !!

धायक मैंने कत जनमों में धपबने नीड़ तोड़े हँसि
शातक का स्वर सुनने वाले वावस बापस मोड़े हँसि ।
ऐसा अपराध हुआ हूँबा किउकी फिर क्षमा नहीं मिसतो
तितमी के पर नीचे हँसि, हिरमों के हप फोड़े हँसि !
धमनिगती कर्ज चुकाने से इससिये बिन्दयो भर मेरे
तम को बेचैन बटकना या मन में कस्तूरी रहनी थी !!

तू मम मनमना न कर अपना इसमें कुछ दोष नहीं तेरा
भरती के काव्य पर मेरी तस्वीर धबूरी रहनी थी ।

मैं कृतज्ञ हूँ अितना भी धनुराग दिया
इससे अधिक तुम्हें तुम वही भी कैसे—
साहित है धाबीवन प्यासा रहने को—
मैंने सागर की सीमार्ये तोड़ी है।

इतनी बार छला फिरणों ने रूप बदल,
छाया होने समा मुझे उबियारे पर,
दिस धामा से वीप्य तुम्हारा धांगन था
बिमने रोक लिया मुझको इस द्वारे पर;
मैं कृतज्ञ हूँ तुमसे मुझे निहार लिया
दृष्टि प्रभा भासीकित करती भी बिजना
ठिमिर हरिमयाँ कैसे मुझ तक धामे है
तम की पहरेबार शिमार्ये तोड़ी है।

बोपी हूँ पय की मर्यादा यंग हुई
यकने पर भी मति को नहीं छोड़ पाया।
संघर्षों में जब भी मिसी पराजय तक
मैंने धपने संकल्पों को दुहराया
मैं कृतज्ञ हूँ तुमने मुझे पुकार लिया
सम्बोधन मिस गया भारत-उद्बोधन की
प्रब तक यों बन्दना धपरो है मेरी,
द्वय करने वाली प्रतिमार्ये तोड़ी है।

धपने छारे पुष्य तुम्हें प्रवित करता
मेर पापों का यदि भास घूम लेत
तुम्हें उबपय तक मैं पहुँचा कर बाता
कुछ दिन पगदंडो पर माघ घूम सेते
मैं कृतज्ञ हूँ तुमने यह स्वीकार लिया
बाँद तुम इसको अभिव्यजन न कर पापो
समादान बसे दे दे रुझियाँ मुझे-
परम्परागत भी प्रयार्ये तोड़ी है।

साँस से जिस जे वन को भूमिका मिलो
मुझको में उपसंहार नहीं हागा
धन्त यही होगा अस्तित्व बिगर जाये
कोई समझीना स्वीकार नहीं होवा
मैं कृतज्ञ हूँ तुमने मुझे मिहार दिया
धपने मेरे साथ यरो भी तो कैसे ?
इस जीवन भर धायद नहीं संवर पाऊँ-
मैंने दपण की गरिमार्ये तोड़ी है।

कभी कराहे अपर किसी का भीड़ मय एककीपन
मेरे भीतों जैसे तुमने मुझे सम्हाला, उसको भी सहसा देना । जैसे तुमने मुझे सम्हाला

कभी घिटल कर गगन किसी क मयनों में छुब जाए,
दिखा-दिखा से भीषम परसे सुझयो-सा चुभ जाए,
कभी किसी का हर मौसू हो प्रमजममा मर जाए,
प्राण वेह को नस-नस में स बिना पुष्य तर जाए,
कभी किसी का, किसी मोद मे छुपने को भ्रुकुसाए मन,
गूतन राहो, जैसे मुझ पर झँकल डाला, उसको भी सहसा देना ।

कभी धँजुरी धरो रहे पर विस्मृति बडे पुजारी को
कभी समपित नयनों से भी सुने खेस धिकारी को
कभी बैबता की कस्तुरा का इतना कर प्रहार हो
विष भर जाए भोसे मन में, धँग-धँग धँधार हो

कभी किसी के सहज हृदय पर झँकित हो जहरी कुम्बम
जुस्मो भाहो जैसे मुझ पर किया उजामा उसको भी सहसा देना ।

कभी किसी की कँधो बिन्दगी मुक्ति गीत गाना चाहे
पर-पर घुमके परिवर्तन को धँगन में लाना चाहे
कभी किसी कृषसे स्वप्न का एकाको स्वर व्यंग करे
फुसलातो कसमों से जूमे बधिर दया से जंग करे

कभी किसी की धर्तबदासा सुमगाए तन-मन-जीवन
सबस निगाहो जैसे मुझ पर प्रमूत डाला, उसको भी सहसा देना ।
कभी कराहे अपर किसी का - - - - -

श्रीगोपाल जाचार्य

गीत कैसे गा सकूँगा

ॐ
धँसुधँसों की बिन्दगी है गीत कैसे गा सकूँगा
बीन टूटे छार टूटी स्वरो के धामार छूटे
छेड़ू पंचम बोसे मध्यम रापिनी क्या गा सकूँगा
गीत कैसे गा सकूँगा ।

स्वप्न टूटे स्वप्न के धामार छूटे
साध टूटी साध धौं भरमान टूटे
धगन धपसेधौं है जैसे कप प्रतिमा सा सकूँगा ।

गीत कैसे गा सकूँगा ।

मेरे मधुमासों के पतझड़ छा गया
सरस सरसर का फमस मुरझ गया
उबड़े माहल गीड़ में मधुहास कैसे गा सकूँगा ।

गीत कैसे गा सकूँगा ।

वियराई सरसों से

फूटा यह मीठ

भाषो रे मीठ मेरे

भाषो—

होते हवा असो

मुख पर गुलाबो रे,

हरी हरी चावर

बिछो भागमनो रे अससाधे मव से

वियराई सरसों से

फूटा यह गीठ

भाषो रे मीठ मेरे भाषो



महसूरुम साहा

बम्पई सांभ मुस्काई

केसर के मलियारे में बम्पई सांभ मुस्काई ।

पछिया ने बाँस भर कर

किरणों का रंग उड़ैसा,

टेसू के धाँपन में रच-

डासा कुकुम का मेसा,

दिलिब-छोर के रजिजम मुख पर छाई नई मुनाई ।

केसर के मलियारे में बम्पई सांभ मुस्काई ॥

महुए की डालो महकी

सुधियों का घन गवराया

पनघट के तट तक घाकर

व्यासा पाहुन भरमाया

मदियों की सहरो पर सेती इन्द्रपरी धँपड़ाई ।

केसर के मलियारे में बम्पई सांभ मुस्काई ॥

बाँवों के पर धाँपन पर

उतरी बँस बाँदनियाँ

सोटी तुलसी-बीरा पर

भुठ-दीपक पर कामिनियाँ

बिलमन के पीछे से छिटकी शेफासिका पुन्हाई ।

केसर के मलियारे में बम्पई सांभ मुस्काई ॥

हर इच्छा कन्दन बन जाए

ऐसा भीत न देखो मन में
रोम रोम बन्धन बन जाये

मन्तर के इस बन्धनसे मैं
प्रबलक कोई बरात न ठहरी
रबा नहीं मंडप प्रांगन में
सी न किसी तिहरन ने फेरी

ऐसा मंत्र न फूको मन में
कुमन-सुमन मंत्रन बन जाये ।

बारंती उषटन मत सेपो
तन-मत पीसा हो जायेगा
मंहदी की घबल सुगंध में
धनुरागो मन सो जायेगा
एसा यजन न देखो मन में
साँत-साँस भग्दन बन जाये ।

रुठ गई गर बंदनबारें
कंगन राते रह जायेंगे
साधों के तिनके दिखरेंगे
महल दुमहसे डह जायेंगे
ऐसा मत दुसरामो मत को
हर इच्छा कन्दन बन जाये ।

①

हिमांगी

मैजुरी भर

मैजुरी भर प्यार तेरा
धीर यह जीवन मरुस्थल
पल रही सू जल रहा सू
बज रहे हैं ठूठे हैं-हैं

प्रतिम का प्राधार मन्वर
भीस जावा समझते मन

जेठ है प्रापाङ्ग-साधन
नयन निरखें हरित प्राँचल
क्षितिज तक बिस्तार रज का
महों कोई मध्य पोखर,
किस तरह सरसे यह स्नेह कौपल
धीर यह जीवन मरुस्थल—
सा बही से सा जल के
ओ बरस कर ताप हरलें
पवन के शीतल रुधारे
प्रोप्य को मधुमास करदें

ज्योत्स्ना से स्नात भरती
हरित सूतर धोड़ निकले
प्यास भोगो राप ठेरे
भोस में मधु नीर सहरे
धीर गागर जाम धल-धल
फिर महों जीवन मरुस्थल

भोर के सिपाही हैं हम—
रोशनी के पहरेदार हैं ।

रोशनी के पहरेदार हैं

कंधों पे लिए हुए सूरज की पासकी
हाथों में पामे हुए बायबोर कास की
पलकों में पामे उस घायत के सपने
बहेगी दोबारें सब, सब होंगे अपने

मिट्टी को सपनों के हाथों सँवारते
एक नई दुनिया का धिहरा उमारते
बनते हैं साव लिए किरणों का कारवा
बढ़ते हुए कदमों पे मुफ्ता है पासमा
साँस के बटोही हैं हम—
बिन्दगी के कामगार हैं ।

●
भिनमलकुमार श्रीवास्तव

साँसों में समा रहा भोर

बाँध रहा सो रे पिया,
फायून का गन्ध दिया,
नयनों में उमर रहे सपनों के डोर ।
बहुकी सी हुवा जमी डोस परी धमराई
भनबावै फूट गयो जामे बरों तरफलाई,
भयनों से छूट गया
एक मधुर सीत नया,
प्राणों की कीन रहा जी भर मरुमोर ।
नयनों में उमर रहे सपनों के डोर ।

पनपट पर खामी सा कितका यह यागर है ?
सोच रहा कौन यहाँ कैसा यह सागर है ?
दृष्टि नहीं मिलती है,
ध्यास पीर बढ़ती है,

फिर भी इन साँसों में समा रहा भोर
नयनों में उमर रहे सपनों के डोर

बिरहा के गाँव यह जाहूगर कौन है ?
नया रहा सबको पर स्वयं बहुत मोन है ।
कसी यह अमड़ाई,
क्षण भर तक मरुसायी,
फिर भी म वीस पड़ा कैसा यह जोर ।
नयनों में उमर रहे सपनों के डोर ।

कौन यहाँ मिट्टर सा करता यह टोना है ?
हाय ! यहाँ जीवन भर मोना ही खोना है,
मीठ नहीं कोई थी,
बीत नहीं कोई थी,

फिर भी इन कंटों से फूट रहा सोर ।
नयनों में उमर रहे सपनों के डोर ।

उम्र बसती जा रही है दर्द की
एक दिन इसका बनावा जायगा

यह बिगोकिन रात गहरी घोर महरी हो रही
छात्र की सँवरो दुस्हन धूपट निकासे रो रही
मिसम के स्वर दूँडती हारो-बकी ठंडी हवा-
मीन सपनों के सितारों की उदासी हो रही,

पस का पुरोहित भौंसुधों से
पाद का एक मसिया सिख जायगा-

मोठ मत कहना उठी है धरियोँ घरमान की
मोठ मत कहना फिरी है बोसियोँ धरियान की
सँस हो भारी रहा है बिन्दयो के ठोस पर—
मीव फिर देना न बोसी मोठ के धरिमान की

सिख न पाया प्यार ही जग
तो ब्यया का धर्य क्या कर पायगा ?

रह गई हो वीर कोई भी धरन्मी तो बनमने दो
पिपसने से बध्म धरिमान तो उसका नियसने दो,
अधूँ-अधूँ तपा जितना तपा सोना तमी कुँदन बना—
इसलिए हो बन रहे बिश्वास की कुल्य घोर बनने दो

प्यार का मातम मनाऊँ किसलिए
मैं बहौँ बाहूँ वहीँ मिस जायगा—

उसकी क्रीड़ा तुम्हारा मन मोहती है ।

उसकी झोड़ा को तुम्हारा चित्र लगभग हो निहारता रह जाता है ।

उसके बीतों में तुम्हारा अस्तित्व हूब जाता है ।

उसके खन में तुम्हारा खोया हुआ स्वार्थ पुनः प्राप्त होता है ।

विरहबोध अपनी क्रीड़ा क्रीड़ा गीत और खन के साथ वह

तुम्हारी ही है ।

उसकी निष्काम्य सिद्धता और अस्वहृदयवानी तुम्हारे बरखों ।

अपचित अद्वयमयी सुमनाम्बुजसौ है ।

तुम उसे भूमि पर प्राप्त करो ।

तुम उसे अतक प्रवाहित बनो में पाओ ।

तुम उसे दिव्य अन्तरिक्ष में बरण करो-जन्तके पुत्र पुत्र के बरेच

अम्बरम्बुज । सिध्दी

वरवाम नहीं, देवना

देवना की अग्नि में तप कर जो बरवान में पाया
उसकी पुण्य-तपिष्ठ को मैं केन नहीं पाया उतकी अग्नि
को संभाल नहीं पाया उसके मोक्षक विनाश विभ्रम में
मेरी साधना के बंध हूँ गये आत्महारा हो मैं फिर से
जौजने जाता हूँ अपनी देवना को ।

जीवन की अरिता ऊँचे-नीचे पहाड़ों के पिशाचियों
से टकरा-टकरा महासंकीर्ण की मूर्च्छना के स्वर्ण में
बहुकर साक-मुपरे समतल पर आकर पसराने लगी है—
संपीठ का स्वर बग्न पड़ने लगा है । इसे फिर से पनो
ऊँची चट्टानों से टकराने के लिये इसकी अलसाई-विनमाई
मारकता को अकमोरने के लिये अपनी के अग्रण में
अभ कर भूमने के लिये ।

जिम स्वप्न-यासिनी के झोड में से इस संपीठ
अपना का अरय हुआ जिसे देवना के आहुत स्वप्न में
से जीवन का नया संकीर्ण मुनरित हुआ बड़ी आहिरे
मुझे, मेरे देवना ! बरदान से जो और देवना है दो ।
बरण का यह बरण सौदा जो और जीवन का संपर्क
है दो । यह जीवन बिहीन अरय से जो और जीवन-
संपीठ की देवना-भीटा है दो ।

याव है खूब याव है—घटनी ही याव है
 बिजली कि बरती का सप याव है !
 माँ के सिरहामे में बेंठा बा मरछ बेंठा
 बा बाँवों के पाछ सपने बेंठे के । -
 मोठ मोठी मुना रही बी में प्रमाती बा
 रड़ा या—कबि के स्वरो में स्वर भर
 "बीती बिमावरी जान री !"
 बीबन-मरछ की बीबलान रूप-झाँड़ !
 केहरे भर पिता की रेबाएँ पितन के
 मरछ—घाँवों में बीड़ाएँ पीड़ित पीड़ाएँ—
 घयाब, प्रमित घबोर ।
 मोठ के स्वर में हबोके की चोट की
 प्रमाती के स्वर में पायस की झमझम—
 सुपधुर ।

माँ के प्यार घों मोठ की पुकार में
 मोठ खूब मर गई । माँ का प्यार
 बीठ गया ।
 लन की घाँवें खोबईं मन रोया, बेंठे
 पाँवें टूट गई हों ! बड़ना भूल जाय
 बेंठे गयो

इन डूड़ी खोईं घाँवों में मरी घाँवों में
 सपने पुकते हैं बरती के—बबसे बड़ी उड़ान
 तो बड़ है जब कि बेंबडीन पली के सपने
 बुके हों बरती से घोर पंख फड़फड़ाते हों,
 पयल-संबस में ।
 सपने घब पाँव से बठ सिर के पाछ बेंठ,
 सिर सहला रहे । मन रो पड़ा—'माँ
 निरास मत हो बैब मैरी इन घाँवों से बैब ।'

म कृकिशोर
 याव है खूब याव है

बन्नीप्रसाक पंचोली
 भास्वा का सार

प्रिय मैरी दुबलता को फडोरता का सप्य म बनाइये । मेरे
 बिदबास को निर्बलता को कछोटी पर न कसिये । मैरी भास्वा के तार को
 समय के खोरो(पादि ब प्रन्त) से बाँध कर न खींचिये । घाघा की मुडममित
 लता पर निराशा की सू न बनाइये । बड़ा के सावन भास्वा के घानम्ब
 बन तुम बरखो तो घाघा-धता पुन हरी हो जावनी, तुम्हारे घाघब में
 दुबलता भी मिट जावनी परन्तु बिदबास को कछोटी से बोला हुया घोर
 भास्वा का तार ही टूट गया तो तुम्हें फिर कंठे या सङ्घर्ष केमल बिदबास
 व भास्वा के मिये हो एक बार काल के प्रख पर घाहीन होकर घाइये ।

सीता शठनागर
सीमंत के सिंदूर की

तुमने तो संकेत भरा नम बेज दिया
पर पंरों में तो साज का महावर लगा है न ।
नयनों में मर्यादा का ध्वज धंका है,
पुन-पुन घघरों में परिणाम-घण्ट के बास बूँबते
मेरी चुनरिया के घाँघस में साँवरों की घन्नि
रक है न ।
मन पर समझापी का पहच भी है—धीधी
धीर देहपी पर नैतिकता की बकमल रेखा है
ऐसे में यह संकेत भरा नम कितनी पीड़ा हैता ।
समझ दो न उधे,
घान वह मेरे सीमंत के सिंदूर की साज रखते

श्री० अलिंद
मधुस्नात रिमभि

घमिन्द । तुम्हारा जगमग नु जन घुँछि-घुँछ में जित माया को भर गया
उसी का परिणाम है मेरी सुबात का विकीर्ण होना । खौरम-स्ताव वायु
सहरियां तुम्हारे नप को स्निग्ध करती हैं और मेरे भावों को नुखर । जब
रेचमी-तगु के क्रोमल बगवन को स्वीकार कर तुम धा जाते हो तब कंधे
समेठ कर रख सकती थी घपनी सुगंध । सावनी मेघ-मालामों की बत
बनुस्ताव रिमभि में वह सुबात घनजाने हो तुम्हारी हो गई ।

घाकाय के मध्य मूर्ध का प्रखर रूप विभिन्न कर बिचकार लो
बया । कुपसा देने वाली लसकी ठप्पा से तीखर्यं धीर सुबात को कंधे
बकाऊ ? जो पब मेरी नहीं तुम्हारी थी । मेरी क्रोमलता ही मेरी बिचपता
है, जयकी रधा बवा तुम नहीं कर सकते । मेरी बिचपता बर तुम्हारा
घबिकार है । तब रधा का नार तुम्हारे घतिरिक्त कीज मेका ?.....

घमिन्द ब्यात वा घपने ही नु जन में । घतने मस्त्रिका की बात कहीं
नुनी ? धीर —बलिबरा की पंजुरियां बिसर गई बहार की ही मरीया में ।

हृदीश मित्रम
गोरखी चले

गोरखी

गोरखी चले,
मन मोरखी चले,

मेंहूरी भरूया हाथ है,
साबना को साथ है

सूझझली राता में,
मोठी मोठी घाता में,

प्यार है पसे,
गोरखी चले,

अक झुनक बिछिया पे तास है बजे,
शीबरा की बंसरो पे क्यास है बजे,

दिबसा से बात मिसे,
तखर से पात मिसे।

छतिया को प्यार देख प्राज है छसे,
गोरखी चले ।

बपो बपेलो घीर फुली की कसी
मीठा मोठा बापरा से फूस में डली,

सटपट पग पड़े रे पड़े,
बौदियो बसे रे डसे,

देस देस जिबगी को पाबवा टसे,
गोरखी चले

घम्वर से स्वेह घुन्ध प्राज है डसे,
पूरव में सास सास हीमखु दुसे

बटक बटक कमस सिसे,
मंवर की प्रास खुसे,

मदमाही ज्या को रंग है दुसे,
गोरखी चसे ।

मासण ! फूस फूस रो मोस करणो बोखो कोनी धे
कवळी कळी कळी रो तोस करणो बोखो कोनी धे

कल्याणसिंह रावरावठ
फूस-फूस रो मोस

कळियां मे क्यू बाट चढ़ावे
भंबरां रो कामा कळनामे
पारै धर रो घाट सबावण
दुत रो क्यू तू हाट सगामे
सोमण ! बाग बाग सू खौळ भरणी बोखो कोनी धे

गळो मळो बैट्या सोदागर
बितर मिदर उतरी भ्रमर
घाट घाट पर मठ बावे तू
माडी नाडां पाणी पासर

जोपण ! देव देव रो ध्याम धरणी बोखो कोनी धे

सगळा पावर मे सोबाळा
सारी घागळ साने ताळा
मन रा पापी ठन रा तापी
हाथ उठारै धमबठ माळा
भोळी ! जणां जणां रो पोळ चढ़णी बोखो कोनी धे

धरती मार्चे फापण धावे
धम्बर गाजे सांभण धावे
मेळो सागे खुई जातरी
भोळर बाजे सायण धावे

गोरी पिएषट पिएषट नीर धरणी बोखो कोनी धे

बांरो रमत बरुं रे पाखी
बां रे साबण कीनी बाणी
ज्यांरी मेणुठ मांटी सोनो
बां रो कामा चढ़णो घाणी
तेमण ! तिहां तिहां रो तेस धरणी बोखो कोनी धे

इक मूरत मिदर मे धरने
इक सरबर सू पापर भरने
इक बर तेस चढ़ा बोबणिये
इक घागण मे भरतण करने

गजबण ! गळो गळो मे रास रमणी बोखो कोनी धे

माँ रो बुझायो

घोरांजी घरती रो बासी एक सनेसो स्यायो है,
पम बूठी मठ भासै माऊ भगैमान बुझवामा है ।

कै'बायो है—'भड़ो-मनक हू पड़ो एक-दो साँस गिरूँ,
पाकभोड़ो हू पान साडला भाज मूडूँ का काँस मूडूँ,
काळां तोड़ी कमर, उमर भर गाडो रो र बुझायो है ।
माँ भगैमान बुझवायो है

मामास्या रो माबड़ भूखी तिस मरती करलावे रे,
पातळ रूस बस्यो परवेसा पाणोको कुण प्यावे र ?
कुण टंडबाळ ? बदे बिसावर भर स्पूँभणो सबायो है ।
माँ भगैमान बुझवायो है

सासोणे ससपत रो माँ रो कोडो खोटो मोस बटै,
डिग्यळ बोल सिक्काबस हाळो भाज हुई भयबोल घठे,
होट सीङ्ग बोसो र माधे पोरायत वैसायो है ।
माँ भगैमान बुझवायो है

यो किरोड़ बण र बीतां माँ भाज निपूती कै'बावै,
रबबट री घणियाणी स्पू गोसा गोसोपो करबावै,
एकर भाय 'र वेस भाय में के-के नहीं बिषायो है ।
माँ भगैमान बुझवायो है ...

मा धायो तो पाङ्गोसण मिस मेरो कूळ बिगोभैली,
'बूख पाटग्यो'—मा सुणतां ही बूडो भास्यां रोवैसो।
इतरो मठ कै'बायो वेग—'कुळ नै काट जगायो है, ।
माँ भगैमान बुझवायो है

पण्डितारिण सु

पण्डितारिण ! तिर पर चारें फूठी करीं बांधी सी
 मिलकठी इमरत मरो ऊबळी पावर ! तू निचडक मणीठी हावा रो
 बिबा समरो बिबा बावां करतीं—बे परवा सी—मस्त मबरी मटकठी
 मराउनी सी बाई लिया । मजान पावर ने हळको सो इसको ही बाय
 प्यावे । भोको सो इमरत ही इबळक जठे जठे ही ! मन हे बांधी
 सामना पण्डितारिण ! पन !

पण ठर पण्डितारिण ! ठर । एक बाव करली हे बार
 नू ! हे सातर क हू भी चारें ही रास्तें रो एक पत्नी हू—घर हे
 सातर हो मे हिमवत करी हे बाव करल री चारें सु—बुरो मव
 माने पण्डितारिण ।

चारें बाई म्हारे तिर पर भी भार हे—बर बोरो सोरो
 मन ही दोलो चक पण्डितारिण—बायती-बायती म्हाप हाव इचल
 मान ज्याधे—बडो बुली घर बोरो हू पण्डितारिण !

हे सातर हो तने पूरु—बांधी मार हळको करण री बा
 सामना कीं मने ही बजा कसाव हू ही चारें बिबा निचडक नीगे मस्त
 मुळकतो जान सहुं । पारो उपकार जानसुं पण्डितारिण ! उपकार
 मने ही शिया बांधी सामना । ●

सणु रे ! दिवळा वाठडो
 घां म्हारी वीरण रातडी

मादायण कच श्रीमाळी

वेरण रातडी

स्यात बितारे माळीजी म्हने हिबकी घावे चडो-चडो

हिरदै मे समझ ऊं तो गीणा ऊबळक मोर बहावी
 घास्या नीठ मनाळ तो हिबको तडक तडक रं जागे
 बाट बोवतां दिनडो काटू, मन समझता रातां
 बिरें-घवन में घंघ घग घंर क क नी यचकातां
 मांस फरकै बीयारा सु धोळू मागी धाकरी ।

बोबण-ठाळ सबासब यरियो हीरां ओर जतानी
 मोर झडूकी सेवा पंछी गिरण गिरण गिरखाकी
 बंठी पाळ कठा सक यी सुं, करती क निगरांसो
 पंछीका घातां में दिवळा सु भोळी पणु बाणी
 दो राटो हिव मनी छोड गी सजन सिधारया थाकरी ।

कई बार गिरतू घाई तो बातां में बिलमादी
 इबदायां मे रात बिबा में ऊबे साय लमादी
 मनी सु पया बातो उणरी ध्यांन राखती रेसू
 तन-मन वे देसू पणु बोबण साय कठा सु वेस्य
 दिवना बीरा ! सास बई सु सेर ग्याव री ताकडी ।

काव्य-शास्त्र | डॉ० धानन्दप्रकाश दीक्षित

और गीतिकाव्य

गीतिकाव्य के संदर्भ में काव्यशास्त्र की साम्प्रदायिक जितनी बोधी साबित हुई है वतनी धामद किसी और काव्य-विभा के संदर्भ में नहीं हुई । गीतिकाव्य को विशेष साहित्य धारणीय सीमाओं में बद्ध कर रखने के संभवतः सारे प्रयास विफल हुए हैं और काव्य की इस विभा में बराबर उन साम्प्रदायिकों के विरुद्ध खिटा हुआ किया है । साबत यह बात एक सत्य के सिमे कुछ विस्मयकारक प्रतीत हो किन्तु यदि सभी बातों के विस्तार में न जाकर केवल गीतिकाव्य को कविता मुक्तक और काव्य के समतुल्य विस्मयकारक के साथ रखकर भी देखें तो इस कथन की सत्यता प्रमाणित हो जावगी ।

इस विषय में जो राम नहीं हो सकती कि गीतिकाव्य जैसी किसी काव्य विभा का अपने यहाँ के काव्य-शास्त्र में कोई उल्लेख नहीं है । इस संज्ञा का प्रचार हमारे यहाँ बिनेली "सीरिक" शब्द के प्रचार पर ही हुआ है और प्रायः वहीं के पढ़ाये-पाठ को पुनः-समझकर हमने अपने यहाँ उसके स्वरूप धारि की जर्बा में भी रस लिया है । वह सब देखते-सुनते सचानक ही हमारे यहाँ के कुछ काव्य-पुरोहितों को इस रेष में गीतिकाव्य की सखण्ड परम्परा प्रकाशित होती मिल गई है और संसृत से लेकर प्राकृत और अपभ्रंश धारि की अनेकानेक विभिन्न श्लोकमयी रचनाओं के माये गीतिकाव्य का तिनक लय गया है चाहे फिर वे समस्यतक की पछियाँ हों चाहे अक्षु-संहार की हों प्रथम साकृन्तल मातली-माचन और और और नाटकों में पाई हुई हों । बात बड़े डरते डरते मैपयुव और वीथ-गोविन्द से शुरू हुई थी और बढ़ गई बड़े-बड़े पोर्षों तक । ऐसा केवल इस रेष में ही नहीं हुआ रस संज्ञा के अगमत्वान में भी इसचम बिखाई गई । बाफ़ाव और बाग ड्रिङ्गवाटर जैसे महापयों में सीरिक को उसके विशिष्ट स्वरूप से

मुक्त करके उसे कविता का समागामी घोषित कर दिया। कविता न कहा सीरिफ कह
 दिया। सीरिफकाम्य इस तरह काव्य का एक भेद मान न होकर उसी का दूसरा नाम
 मान हो गया। लेकिन उक्त दोनों महानुभावों के कथनों में इस पर्याय-विमता का विशेष
 कारणों से ही उत्पन्न हुआ है सामान्य रूप में दोनों को पर्याय स्वीकार नहीं किया गया
 है। किन्तु उक्त विशेष कारण की ओर ध्यान करके बाकायद महापद्य की शक्ति के सहारे
 पर हमारे बड़ा तुलसीकृत रामायण तक में यीति भावना की वर्षा बसाई गई है,
 औरियत हुई कि स्पष्टतः उसे यीति-काव्य नहीं कहा गया। डॉ० विनयचोहन धर्मा कृत
 यीतपोषिण के द्वितीय अध्याय की प्रस्तावना के लेखक डॉ० चित्तेश्वर वर्मा ने " धर्मों "
 की शरम प्रामाण्य पुस्तक " विरहकोष—१४वाँ संस्करण—" से उद्धरण देते हुए इसी
 विषय का प्रतिपादन किया है। डॉ० वर्मा को इस बात पर प्राणित है कि कवि की
 धारानुभूति को शीघ्र धारण मानने के कारण तुलसीकृत रामायण धीरे धीरे पर
 यीतिकाव्य से अक्षुण्ण कर दिये गये हैं। यदि जिस कविता में कवि की महानुभूति न
 भी हो, उसमें भी यीति भावना मान ली जाय तो इसमें क्या प्राणित है ? जब वास्तव
 में यह देखा गया है कि तुलसीकृत रामायण धारि जहाँ कवि की महानुभूति
 दिखाई न देने पर भी वह धर-धर में मारी जा रही है तो जयमें यीति भावना के प्रभाव
 की कल्पना का हेतु क्या है ? क्या भारत के किसी प्राचीन धर्मका मध्यकालीन साहित्यिक
 ने भी इस धारण को अनुभव किया धर्मका धरधारा है ? यदि नहीं तो क्या इसलिए कि
 धर्मों की साहित्यिकों ने निरीकृत प्रभाव यीति काव्य को कथियों की धारानुभूतिमूलक
 बताया है ? परन्तु धर्मों की बात है कि जिन धर्मों की उचितियों को महानुभव मानकर
 इन धर्मों की मुक्तिप्राप्त द्वारा धर्मों के धर्मों का प्रपच लड़ा कर देते हैं, धर्मों
 की शरम प्रामाण्य पुस्तक " विरहकोष—१४वाँ संस्करण—" निरीकृत काव्य के इस
 उद्धरण का उद्धरण देकर दिया है। बड़ा स्पष्ट निष्कर्ष है " अथवा संभवतः बहना
 रण परिणत वा जितने सर्वथा स्पष्ट देण दिया कि निरीकृत काव्य स्वर्ग कविता
 मान का दूसरा नाम है जितने यह सिद्ध होता है कि निरीकृत कविता में कविता
 के सहारे प्राप्त का उद्धरण व्यक्तित्व तथा भावना प्रभाव का धर्मभाव है। इतनमें
 धारानुभूति समावेशन कृत काव्य-विचारन कविताएँ विषय के लिए वास्तव में किसी
 भाव का नहीं है। इस कथानक प्रभाव-काव्य की उद्धरण मानते हैं इस नामते
 है कि नाटक भी कविता है, परन्तु जब इन दोनों में व्यक्तित्व भाव प्रभाव होता है तब

बहु सिरीकस तक जा पहुँचता है। परन्तु कुछ प्रबन्ध तथा कुछ नाटक के प्रतिरिक्त शब्द सब कविता सिरीकस होती है।”

डा० वर्मा के बड़हरण तो विना किन्तु उस बड़हरण की न तो चम्पवी पर ही ध्यान दिया न उसके तात्पर्य पर। नीतिकाम्य तथा काव्य को पर्याप्त मात्रा में का अन्वय महाअर्थ का एकमात्र परिभाषा यह है कि उसके द्वारा संगीतप्रवृत्ता को काव्य का परिभाष्य करवा दिया जा सके। संगीतप्रवृत्ता काव्य का परिभाष्य तत्व है और आत्मनिष्ठता उसका विशिष्ट गुण। नीतिकाम्य में यही आत्मनिष्ठता या व्यक्तिगत संघर्ष और अन्तर्गतता है इसी कुछ के कारण डा० वर्मा के द्वारा स्वीकृत ‘प्रमाद्य पुस्तक’ में ही इसी बड़हरण में कुछ प्रबन्ध कुछ नाटक और कविकृत की सत्ता को प्रसंग-से स्वीकार किया गया है तथा कहा गया है कि जब इन दोनों में व्यक्तिगत भाव प्रबन्ध होता है तब बहु सिरीकस तक जा पहुँचता है। इस बात पर ध्यान दें तो धारण यह कहने की आवश्यकता न हो कि ‘तुलसीकृत रामायण’ में उसके अन्तर्गत जाने के कारण “गीति-भावना” जैसे ही हो उसके अन्वय-रूप के कारण उसमें नीतिकाम्यत्व नहीं है। निरवय ही गीति भावना और नीतिकाम्य होना दो चीजें हैं उन्हें एक ही मानने के लिये दोनों से कोई क्या कहेगा? साथ ही इस तर्क का उत्तर देने की आवश्यकता भी नहीं है कि भारत में कभी किसी ने नीतिकाम्य का नाम दिया या प्रयोग नहीं या कि कभी किसी ने महाभूति के अन्वय को अनुभव किया और दरसाया या प्रयोग नहीं। जो काव्यरूप ही कभी भारतीय अस्तित्व में नहीं आया उसके लक्षणों का विश्लेषण-व्युत्पत्ति भी कैसे होता?

इन बर्तु ‘तुलसीकृत रामायण’ को नीतिकाम्य मानने से इतना ही इनकार करते हैं कि उसमें महाअर्थकता साफ बोल पड़ती है इतना ही इनकार नहीं करते कि उसमें महाभूति का आत्मानुभूति का प्रकाशन नहीं है। नीतिकाम्य के अन्वय में निरवय ही यह एक आमक कारण प्रचलित है कि उसे परिभाष्य आत्मानुभूति का अन्वयक होना चाहिए, या कि वह होता है। आत्मानुभूति यदि व्यक्तिगत स्तर के कुछ कुछ का अन्वय है तो केवल उसका अन्वय नीतिकाम्य का निर्माण नहीं बन सकता। आत्मानुभूति यदि वैयक्तिक सुख-दुःखानिष्ठ किन्हीं ऐसी वस्तु का नाम भी है कि जिससे

कवि की विषयगत लग्नयता की मूचना विद्यती हो तो उसे यौतिकाम्य का एक बखल स्वीकार किया जा सकता है। हम केवल वैयक्तिक सुख या दुःख में ही डूबते हैं ऐसी बात तो नहीं है, बल्कि कभी प्रकृति का सौन्दर्य हमारे सिधे मुखलापि सिद्ध होता है तो कभी रोग पर बनि जाने का असाह ही हमें मग्न करता है। कभी किसी की रूप धरि ही हमारी पाँखों के माध्यम से हमारे हृदय में अङ्ग धीर गड जाती है धीर कभी किसी अस्व को देखकर ही हमारे मुँह से दो बोल फूट चटते हैं। पारमानुभूति का कोई एक ही शिखर रूप नहीं है, अथिनु किसी भी वस्तु हरय धयवा बटनादि को पूर्ण संवेदन के साथ हृदय की निचलो से निचलो बरतों में धनुमव करने का नाम ही पारमानुभूति है धीर बहो पारमानुभूति है, मन-नीयता है बहो मावों का अर्धेय संपीत को तरनता। धापसे-धाप बह जाता है गद्य की बाधमों में प्रवाहित नहीं होता। भावोद्देय साधारणत धर्षकारों धीर धावा-सौन्दर्य के लपकरलों की तरह नहीं देखता विन्नु जिनका मनोवा कुल धारिक लौघ है, जिनकी बाणी साधारण रूप में भी धीरों से कुल विद्येपता ग्रहण कर चुकी है उनके काम्य में इस भावोद्देक में भी कुल मन्परता, कुल कीधम धा ई जाता है। मीरा के भावपूर्ण पदों धीर महादेवी के सजन कवित्वमय कीतों में इसीमिने धन्तर है, मीरा कीधे धीर सहज बात कहना जानती है धीर महादेवी रूपकों में धी प्रतीकों में लपेटकर ही बाणी का विस्तार कर पाती हैं। धनुपातत इसीतिथि, मीरा का दुःख धिर बढाया सा लभता है। इस तरह पारमानुभूति केवल कमात्मक या सहज रूप में ही प्रकट नहीं होती बल्कि भाव के भी धनेकामेक स्तर ग्रहण करती चलती है। यही कारण है कि यौतिकाम्य के धन्तरगत केवल प्रेमपीत वा सौन्दरीत ही स्वीकृत नहीं हुए बल्कि स्तुतिरसक बलुनात्मक पटनात्मक धारि धनेक प्रकार के धीर धेर भी स्वीकार किये गये हैं। इस दृष्टि से न तो मुरकृत पर ही यौतिकाम्य से बहिष्कृत किये जा सकते हैं न विद्याग्नि के पर—जिनने कुप्ल-सापा के मकधिल-वीर्यय धीर ध बार का धर्गन है—ही बहिष्कृत किये जा सकते हैं। न विषयपरिका धीर यौतावली को निरस्तृत विमा वा सकता है न रेतनेन के धाधुनिक कीनों को। इन सबको एक-साव स्वीकार करने का एक बलिगाध यह कि यौतिकाम्य के सम्बन्ध में प्रथमित यह धारणा कि बहु पम्भृति—निकाक काम्य है धीर उने बाह्यार्ध-निकरक काम्य से धर्षवा धतव रगा वा सकना है धरने-ध य गभिड हो जायगी। एक तीर धर इस बाठ के बहने की धाधग्जना भी नहीं है बरोंकि पदने हा यौतिकाम्य के जिनने प्रकार लार्हिलरों के धीव लम्बानिन हैं वे इस धान के प्रमाण हैं कि धने किसी एक धर्म में रचना लधन वा धधिन नहीं है धीर पारमानुभूति के स्वरुप को अभी प्रचार लमधने की धानरधयता है।

सम्बन्धित और परस्परानुसृष्टि के प्रदर्शन से बड़ा प्रबल इष्टकर नीतिकाम्य के सम्बन्ध में प्रकलित एक ग्रन्थ धारणा और विचारमें है। जिस तरह यूरोप में नीतिकाम्य को काव्य का पर्याय कहते हुए कुछ सोम दिखाई पड़े जहाँ तरह जड़े मुक्तक का पर्याय मानते हुए भी। डा० रामप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'साहित्य रूप' में नीतिकाम्य को मुक्तक का समानार्थी ही बताया है। उन्होंने नीतिकाम्य के सम्बन्ध परिलिखित शेरों को ही मुक्तक के सम्बन्धित रखा है। उन्होंने लिखा है—'मुक्तक पारिभाषिक नाम है और उसके समस्त शर्तों का बोध हीठा है तथा प्रतीत भीत इत्यादि उसी के भेद हैं। इस दृष्टि से मुक्तक और निरिक्त समानार्थी सिद्ध होते हैं।' पृ० २३४

उक्त कथन में 'समानार्थी' शब्द से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि नीतिकाम्य का अर्थ कोई कसब नहीं है, बल्कि उसका अर्थ ही उत्पत्ति नहीं है कि वह मुक्तक के ही एक भेद क रूप में है और यदि नीति मुक्तक कहें तो उससे बँटना नहीं चाहिए। मुक्तक एक व्यापक संज्ञा है और नीतिकाम्य उसका एक भेद मात्र। भेद में भी अपने पृथक और विशिष्ट कसब हो सकते हैं जैसे कि नीतिकाम्य में है भी। मुक्तक के अनेक रूपों में हमारे यहाँ क सर्वथा अलग-थलग बोझ धारि सभी प्रकार के अर्थ या भावों से और पुराने पाठियों से सुनिश्चि तो बोझ भी संकीर्ण में उत्पन्न कर के अर्थ को सुना सकते हैं। अर्थ का अर्थ तो अर्थ नहीं बल्किता में भी स्वीकार नहीं किता जाता तो उनमें जैसे स्वीकार किया जा सकता है? अतएव संकीर्ण की इस स्थिति मात्र के आधार पर सर्वथा धारि को भी नीतिकाम्य मात्र सेने की प्राप्ति बहुत संभव है यदि मुक्तक और नीतिकाम्य को समानार्थी मान लिया जाय। किन्तु वास्तविकता यह है कि ये अर्थ सभी एक संसार चातुर्भे अर्थ-अर्थ धारि के अर्थ में ही धार है अथवा प्रकृति का उत्पन्न अर्थ ही इनमें हुआ है। ऐसी रसा में यह संभव नहीं है कि इनमें नीतिकाम्य की संज्ञा भी का सके। अतएव नीतिकाम्य और मुक्तक का भेद बनाए रखना ही उचित है ही नीति काम्य मुक्तक का ही एक भेद है, इसमें सन्देह की बुझाए नहीं है।

नीतिकाम्य के स्वल्प सम्बन्ध में विद्वेषक: उसके भेद-वर्गीकरण को लेकर, अपने विवाद प्रस्तुत किये जा सकते हैं, और साथ ही पूर्वोक्त प्रश्नों के संबंध में भी संकाशों का प्रकल्प हो सकता है। यहाँ हमारा उद्देश्य किसी निरर्थक की कोपणा करना नहीं है, अतएव हम केवल तीन प्रश्नों को उपलब्ध करना यहाँ पर्याप्त समझते हैं। "काव्यशास्त्र और नीतिकाम्य" शीर्षक से बिल्कुं पुरे विस्तार की बातकारी का अर्थ हुआ हो उनके में असा चाँहना और प्रकाशित शर्तों का अर्थ सेने का आग्रह करवा।



नए गीत : सम्भावनाएँ

चन्द्रमौलि उपाध्याय
प्रकाश परिमल
दोहरजय गम

नयी कविता अर्थात् नये भाव शीघ्र वाली कविता अर्थात् नये नव्यात्मक बहिष्केय को भाषा देने वाली कविता अर्थात् नया कविता जिसकी आधार धिता नये सामान्य संवेदना की विम्वारमक अभिव्यंजना है बहुत छोटे अर्थात् दो चार कवियों में समर्थ होकर प्रति फलित हुई है। यदि डा० लक्ष्मीनारायण साम तिरुके निर्मल नर्मा और रघुवीर चन्द्रम को नया कवाकार मानते हैं तो भिरिषत रूप से चमपेर और केदारनाथसिंह जैसे दो चार लक्ष्मीयों को छोड़ कर शेष नये कवियों की सम्भी पंक्ति तिरुके पिष्टवैपण है। यहाँ तक कि कितनों को तिरुके यह मामुम है कि नया छोड़कर सिधने का धर्म नवी कविता है। टीक यही स्पष्टि नये बीतकारों में भी है कि वे 'मन नहीं लजठा तुम्हारे बिन को एक पंक्ति में लिखना मुठनापन और लवी को छोड़ कर 'मन नहीं सपया ।'

तुम्हारे बिन ।

दो पंक्तियों में लिखने में 'विशिष्ट' नयापन समझते हैं। दोनों और नइबइ है। फिर भी नये कवियों की यह सम्भी पंक्ति, जो अम्यवइ रचना करने के लिये सामान्य सेकर देता ही नहीं हुई बीतों और बीतकारों को धासामयिक और 'मैंने' कहने लभ बपी है बिस्वी जाने इत त्रिस्तिते में गयाया मुखर है। और यह धारा धासामल नये शेष के अर्थ के बीचे होता है। फिर भी धासामल मुठ नहीं है— बीछा नयः भिष्कवला-भबन्ति। मुठ यह है कि इनसे नये बीतकार की धासवा बबइ बबइ से उकड़ती है और यह धात बिन इत चिन्ता में चूटा है कि नये बीत में 'सद्विभव' और 'संशुपुली' जैसे कीन कीन सी बड़ी मुटियां लाकर मुनेहू कि कम से कम लोकरपीतों या लोकरत्यों के लवीप तो चूँ क्योंकि इतोलिये बेला धासल और केदारनाथ सिंह प्रसिद्ध हो गये। फिर भी धासबिक्ता बिरुके एक बइसु है और यह नये धासबोच के उतधिले में न धाकर इयावाव

के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में (वसायिक के विरुद्ध नहीं रोमैटिक के विरुद्ध रोमैटिक की प्रतिक्रिया) नयी कविता और नये गीतों में व्यक्तित्व हुई है। और शायद लोकतन्त्र-प्रधान नयी कविता और गीत अपनी अनकाशीन अन्य रचनाओं से अधिक सफल रहे हैं।

शायद यह प्रायतन भारतीय और बड़े वसायक तरीका है कि कोई नया गीतकार पहले अपने आपने 'नये गीत' की परिभाषा रखे नयी कविता से जिसका तात्पर्य बँधने और तब गीत लिखे। उदाहरणों से लेकर इतर लिखे गये तपाम गीत चापा, सौर्य बोप तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से छायावादी गीतों से भिन्न रहे हैं। और यदि वे भिन्न हैं तो श्रीकाल्त वर्मा जैसे लोगों को उन्हें नया कहकर स्वीकारना चाहिये।

यह रहा नये गीत और नयी कविता का अन्तर कहाँ है ?—बँधा प्रश्न। गीत प्रायतन अतिरिक्त अभिव्यक्ति का प्रयोग करता है जो कोमल संक्षिप्त और संकीर्णता होने के कारण अतिरिक्त यथार्थ का बड़े कमाती और स्वप्नित चरित्र पर पकड़ता है। निरस्त और अस्तुता होना इसके लिये कठिन है। नयी कविता का प्रायतनिक यथार्थ और सबसे सम्बन्ध कसती कमायक निरस्तता या अस्तुता का मोर्तों में निर्बाह ही वास्तव में नये गीतकार की समस्या है। निरस्तबैह नयी कविता ही छायावाद की सही प्रतिक्रिया है अर्थात् रोमैटिक के विरुद्ध यथावत् की प्रतिक्रिया और नयी प्रथिमाओं के विरुद्ध नयी प्रथिमाओं की प्रतिक्रिया। इसके विपरीत नये गीत के छायावादी गीत के विरुद्ध कजानी स्वर पर ही (सिद्ध दूरता के विपरीत 'सोकन' होकर) प्रतिक्रिया की है और शायद इसके अधिक इस विषय की सम्भावना ही नहीं हो सकती। यों कुछ ऐसी नयी गीत क्या रचनाएँ भी मिली नयी हैं जिनमें रोटी बेटे की समस्या को अभिव्यक्ति दी गयी है किन्तु उनका अतिरिक्त 'माथिप सान' जैसा ही समझ वा सकता है।

नयी कविता की गीत मिलकुल साक है अर्थात् अब नये संवेदनों की विचार्य पिछाई कम रही है। इन कविताओं पर से कवियों का नाम हटा लीखिये तो सारी कविताएँ किसी एक कवि की लिखी हुई ही लगती हैं। और यही यह साक हो जाता है कि नयी कविता है परिचय की नकल नये बहु संसार की सारी भाषाओं में कम रही है। और अब बुकि परिवर्तन में फिर से अदरकता उभर रही है, यत यहाँ की अन्तरगत रचनाओं की भाषा प्रयुक्त चरित्र के रूप में करनी चाहिये। फिर भी नया कवि यहाँ तक आ रहा है जहाँ से सौतेला तो नहीं ही। जामना भागे। और जाने जाने में यह नयी कविता की 'तक' की अपरिचित को पचा कर भाषा। शायद नये गीत ही नये साहित्य की प्रथिमा

समीपस्व सम्भावना है, क्योंकि प्रतिभाएं जब भी दूरी और तीव्र बेली की ही मैदान में हैं। और नया भीत ही नये कविता को छायेवा पचायेका। इपर कुछ बहुत नये कविता में यह काम करना धारम्भ भी कर दिया है— नाम मैना ठीक नहीं नये धारमी को धरुकार से बचाने के निम्ने।

फिर भी नये भीतकार के निम्ने मयी कविता की बचार्चकारी सतम्पुस्तता सुपाप्न नहीं, गरिष्ठ होयी और स्वलता सम्भावित होयी। क्योंकि इयारा यचार्य है बर्ष रचये और विद्वत सैत और इन दोनों के बसते कुप्य टूटन, विदुप्य या धारोस धारि। बर्ष संपर्प और लेख को लेकर नये साहित्यकारों में दो खेमे भी हैं। बल्कि प्रवृत्तीय सेना जब राष्ट्रीय पराष्ट्रीय (जस समर्भक बीज समर्भक) को टुकड़ों में भी बंट गया है (उदाहरण है 'पूर्वावल')। प्रवृत्तीय साहित्य प्रयोजन प्रबल है और व्यक्तिवादियों के निस्संग धारों ने बसका यत्ता बोट रक्खा है। इन धारों विधियों के बसते नये भीत की सम्भावना कर्ना टिकती है प्रल बहु है। निश्चित रूप से भीतकार पुनरुप्य नहीं होया और न तो सपूने समय को चढ़ेना। बहु बिर्ष युय की सतव चेतना को अपने व्यक्ति निष्ठ बरतव पर कोयल सवेदनों की धारमी में छातकर ध्वजित करने का प्रवात करेया और कर रहा है। बहु कविता की धम्य विचारों की हत्या भी नहीं करेया। फिर भी समवासीय कविता और बसते सम्बन्धित परिवेष की क्यता को पचाने के हिलतिले में भीत अपने ह्यर और बाह्यसंभीत को एक सीमातक ले सकता है। तावही बहु भी धमिक सम्भव है कि चित्तोचित पठमधीन परिवेष के समानांतर धारों का स्वर धरास्वाकारी ही रहे। धारों के बिनकुल नये धारित्य नयी कविता को धारवत्तु कर जाने की अनिश्चिति में है और इबनिय पहले के धारों से बहुत भिन्न है।—फिर भी नये भीतकार को 'बहिर्जन' और 'संघुपुनो'जैसी नयी धारों से सावधानी से बरतनी ही चड़ेयी। नये धारों को लेकर यह विरवात तो किया ही जाना चाहिये कि भीत रोमैटिक और ध्वजित विधिष्ट होकर भी निरसंग (detached) हो सकता है। ● ●

आंतरिक लुप्टि का प्रत्येक उपकरण धारम्भ धरवा देरना को धरवा में बर सविबलम्भना के निर वाकने लाग है तब कविता के स्वान वर भीत का सम्भ होता है। कविता और भीत की धारुति इस प्रकार स्वयम्भूर्त है—मुप दुकारिक धारों

के साथ एक मतिहीन स्थिति का मन में सहज प्रथम हो जाता है—घोर यही मति
 ब्रह्मचर्य से सत्य में प्रतिबन्धित पाती है। स्वर की पुनरावृत्ति प्रकृति समानुत्ति से
 सत्य का इतना सम्बन्ध नहीं है जितना प्रस्तुत क्रिया की मति मति से है। इसलिये जब
 तक स्वर किसी प्रतिबन्धित प्रकृति क्रमिक प्रवाह में नहीं आ जाता तब तक
 उसमें सत्य की प्रतिबन्धित ही रहती है। जो सत्य की स्वर के साथ प्रथम करने का प्रयत्न
 करते हैं वे इस प्रथम में सती कर सकते हैं—क्योंकि सत्य का समीप से जितना सम्बन्ध
 है उतना कविता से नहीं—कविता रसारमक वाक्य है—प्रकृति समानुत्ति प्रथम प्रतिपादक
 वाक्य है—कविता में निहित भाषात्मक मन में रस का संचार करता है जब कि सत्य मति
 मति विचार के रूपी परिवेष्ट से सत्य योजना को प्रकृत मधुर बनाती है, काव्य में सत्य
 चीपकारिक है जबकि संकीर्ण में प्रावत्यक मति की मिठास' प्रकृति 'विष कण्टीस'
 की प्रभावप्रकृत सत्यता प्रकृत करने वाले नीतकारों की रचनाओं को उपयुक्त कारण से
 ही काव्य की सत्ता नहीं की जा सकती है—घोर काव्यरस की नई पृष्ठभूमि में यहाँ
 कविता सत्य सत्य के प्राग्रह से मुक्त है—यह स्थिति घोर भी प्रभावप्रकृत हो पाई है।
 घोर कविता के क्षेत्र में उस परम्परा पर नीत मिठास वाले को कुछ ऐसी दृष्टि से देखा
 जा रहा है जैसे नवीनता से इनका कोई सरोवर नहीं है। कुछेक को धार्ये प्राप्त है उनकी
 प्रकृत एक परम्परा बन गई है—घोर उन्हें नवजागरणवादी नीतकारों के ही—सत्य में
 स्वीकार किया जा सका है—काव्य सृष्टि के नए विभाग में उन्हें सामिल नहीं किया
 गया है।

इस सबके बावजूद भी काव्य को कसा की बेसी से पृथक नहीं किया जा
 सकता घोर हमें सत्य सम्बन्धीन कविता में भी संपत्ति (Consistency) की खोज बरनी
 पड़ती है—कसारमक संपत्ति के प्रत्येकण की बात जब नवी कविता के संदर्भ में पाठी
 है तो धीन्यबोध के कुछ प्रभावप्रकृत प्राग्रहों का हमें परिष्कार करना होगा। कसा-
 सृष्टि की मौलिक प्रक्रिया में कविता समीप तथा विचकता की ही मति एक विशेष
 प्रकार की मौलिक ऊर्जाओं से मुक्त रहती है। लेकिन यह कि प्रकृत की सभी ऊर्जाओं
 कसा की सृष्टि का कारण नहीं हो सकती (कहावित यह इसलिये हो कि इनमें से
 प्रतिक्रिया प्रतिबन्धित के लिए प्रेरणा नहीं देती) इसलिये हमें यह स्पष्ट समझ लेना
 चाहिए कि सर्वज्ञ के लिए बाध्य कर देने वाली विविध प्रकृति ही कसा के परिवर्तन की

परिचायक होती है।

सब मूलभूत संघटन इस बात का रह जाता है कि रचना प्रक्रिया की इस मौलिक स्थिति में संघटन का स्थान कहाँ है? प्राकृतिक व्यापारों की भाँति घाँवरिक सृष्टि का निर्वाह भी अत्यन्त सूक्ष्म है—दिनरात सूर्योदय सूर्यास्त अत्यन्त शीघ्र-पावस धारि की निरन्तर-आकृति प्राकृतिक व्यापारों में एक स्वाभाविक संवत्ति की स्थापना कर देती है इसी प्रकार घाँवरिक जगत में प्रकाश-संस्कार के प्रभाव से अपने मायाय मुक्त-मु-आदि के विविध प्रतीक-विम्बों में प्रकट हुई अमूर्त आभाकृतियाँ घोर लक्ष्मी प्रतिक्रिया से अपना बोध सब विचार निरन्तर एकाग्रित 'आग्नेयिज्ज' का निर्वाह कर देते हैं। घोर हमें आश्चर्य सृष्टि में एक लक्ष्मी धारण न होने वाली संवत्ति का बोध होता है।

सबसे अधिक किन्ती एक स्थान पर अपनी रचना में यह संघटन न दिखाकर समग्र रचना के माध्यम से यह प्रभाव उभारने के प्रयत्न में लगा है घोर आश्चर्य सृष्टि निहित लय को प्राप्त करता है। इस प्रकार लय भीत की सम्भावना एक विविध सपायक प्रकृति के सहारे होती है—भावाविभोर प्रकृतिक रचना की घाँवरिक लय से विमुक्त भीत मोक्ष को इन विरल लक्ष्मी प्रकृतियों में निरवध ही आश्चर्य सृष्टि में निहित प्रकृतियों की लय की बहुत ही स्वयंस्फूर्त प्राप्ति हुई है।

सन्निवत सवंग सता बरिणीलन

कोनन मलय धारी ।

भाषा में मानव य देने वाली एक सपेट हो सके इस हेतु उसमें क्रिया अथवा विवेक लक्ष्मी को सहज रूप से धारण-वीर्य करते प्रत्यक्ष करने तथा संशोधित करने की मुआरय होती चाहिये—इस स्थिति की काम में तथा कला में विवेक लक्ष्मी से इतना अन्वेषण होती है कि वे भाव तथा कला करने की प्रक्रियाएं हैं। भीत एक पात्रमूल है जिसे धारण के संभवतः लक्ष्मी में उद्योग जाता है। जीवन-प्रवाह में कविता के लिए कोई भी धारण हो सफ़ा है—किन्ती भी धारण को ठहरा कर लक्ष्मी लक्ष्मी की लक्ष्मी में लक्ष्मी है किन्तु भीत लक्ष्मी प्रवाह के साथ सम्बन्ध होकर लक्ष्मी लक्ष्मी की स्थिति का नाम है भाषा के मौलिक प्रतीकों की अत्यन्त उच्च अन्वेषण है—धारण के माध्यम से संशोधन के साथ बनती हुई लक्ष्मी की लक्ष्मी—प्रकृतिक के लक्ष्मी संस्कारों से निकली प्रकृतियों की

प्रसक्त मङ्गल से ही नीतमय सुख प्रकट होगा ।

गीत की इस सम्भावना की ध्यान में रख कर छायावादियों ने हिन्दी की उड़ी बोली की पसता से बाहर निकाला या धीरे हिन्दी में मौखिक काव्य की परिभा को प्रकटया था । किन्तु धर्मी भी सही काव्यत्व की सिद्धि के लिए जसमें बहुत कुछ लक्ष्मीबापन माना गया था—नए कवियों तथा गीतकारों का परीक्षण इसे काव्यमाना बनाने का सर्वप्रथम प्रयत्न रहा है । उन्होंने नए विम्बविमान, नई प्रतीक योजनाओं तथा विशालमक स्थितियों की बहुलता को प्रकट कर हिन्दी में काव्यत्व के बीज डालने का प्रयास किया है और यह प्रयास धर्मी भी जारी है ।

नवगीत के क्षेत्र में गौरव सर्वप्रथम नई सम्भावनाओं को लेकर प्रकट हुआ । मङ्गल की चिह्नोद्दिष्टी बामुनी के सुर कूबता हुआ जीवन व्यपत्त का यह छायातर चक्र यथा रहस्य की रसाद्रिप्त गूँकों पर धीरे मनुष्यता की संज्ञाचिह्न को तैपठा रहा अपने कोयल स्वर्णों के बाहु से । उसकी पाशाव मुक्त-मुक्त को निरत बेचिन्तक अनुभूति तक ही सीमित न रही—जसमें जीवन के प्रति एक प्रकृत-मुगाभारकारी सहानुभूति बतरी है । गौरव मान की शून्ने,पनिपारे मरसी बरितयां व्यभिचत जीवन को पकौहारी मानवता को अपने मनु-स्वर की कोयल व्यक्तियां देता हुआ—विन्दवी की धार को पहाड़ में छतार 'जिने' को मनुती चिन्ता में निरत बिचार्ई देता है ।

इस प्रकार नव-छायावादी गीत का यह पुन गौरव के साथ एक चुनौती लेकर प्रस्तुत हुआ था । (इसे यदि नवप्रभाववादी युग की संज्ञा दे ली क्याचित धार्मिक उपयुक्त होगा ।) किन्तु धर्मी भी गीत को अपने पौराणिक-कविमत्-परम्परा से मुक्ति नहीं मिली थी स्पष्ट बन से यह दृष्टिपोचर हो रहा था कि लक्ष्मीबापन गीतकार की स्पर्शकता नई कविता की अनुभूति के समानांतर ही गीत को प्राकृति करने पर है । धीरे धीरे कारण था कि गीत में नव प्रभाववादी युग का प्रवेश वर्षों से प्रारम्भ ही हो गया था जब से गीत को स्वर धीरे लय के प्रयोग माना जाने लगा था इस पर इसाहा धार्मिक क्षेत्रों में इत्सा हुआ था । मंच के नाटक कवि कविता की प्रारम्भ पर कुठाचक्रात कर रहे हैं तथा धर्मी धार काव्य-परम्परा से परिचित व्यक्तियों में यह बात छाछीर पर प्रकट हो गई कि गीत मुरनिरपेक्ष वापुर्ष से मुक्त होना चाहिए—मुर्निरपेक्षता का यहाँ यही धर्म है कि एक गीतकार हाथ मोहक स्वर में गाए जाने के परचाठ भी प्रभव है

पडे जाने पर कोई चीत मन में बंदी ही मधुरता का संचार करदे ।

इस प्रकार प्रारम्भित हो जाने पर चीत से मेघता की धातु मांग कम होती गई और उसकी मेघता पर सभी की दृष्टि केन्द्रित होने लगी । चीत के रूपरस का धारणापल दोनों को लेकर इस बार प्रयास प्रारम्भ हो गया । चीत की बरीदा का नु मा दया पा—दोनों के कंठों में बार-बार बोले इससे बढ़कर चीत उसकी धारणाओं गुरव करने लगे ऐसी सम्भावनाओं के बीच उसमें डाले जाने लगे । एक साथ अनुहार और उपसम्बि की बहुत सुन्दर प्राकृति तीरबोहार चीतकारों में सर्वप्रथम रामावता रयागो के गीतों में हुई । किन्तु रामावतार रयायी परम्परा के नीताकास में जैसे कोई ए चीर छोड़ लिए गए तारे से धार्मिक मौलिक नहीं दिखाई देते । उनके काव्य में वा पीत है बहूँ धर्मना है बन्दना है पीर समपल्लु के कूपों की छाया में चलने वाला पा है—समेव में रामावतार रयायी चाहकर भी इतने मौलिक नहीं हो सके जितनी भूमि बन चुकी थी उत मौलिकता के लिए । और वे इससे धार्मिक कुछ नहीं कह सके—

“ चीत की चीर को ही बरफ़ कर बड़ी
 कून हो तो किली देवता पर बड़ी
 पंखियों को तरह तुम बहूँ बज उठी
 मैं बहूँ प्राचना की तरह गा उठू । ”

घरने धारम्भन को ऐसी काननिक परिमा दे देने के बरबाग़ उते वातविकता कबोउने लवती है और उनके भीतों में ‘अदृष्टम अपकने लवता है । कारवा में चलते चलते किनी मुने हुए बनशारे के उदय सोये सोये बन वाला हो जाता है यह चीतकार और हमें लवने लवता है जैसे काव्य में यह जो बरिवा उम्हूनि दिगेयी भी बह बनावटी थी ।

विश्वभक्त गिदू बमन के भीतों में जीवन में व्याप्त कुहासे के धुधमके में फिरण की धारक का गिनाव लकर तो वा जाना है पर बसके लिए किनी के रसेद की सो बूँदे प्राप्त होनी आवश्यक है—धर्यवा चीवन का यह धार्मिक अन्तहीन सकर भला कटेवा कैमे ? इस प्रकार समनओ के बीच भी ‘कण्ठीपण्ड’ है—अनुभूतियाँ उनके अतीव से मुन्नगी है और वे उगें धर्म के साथ जुलाठे हैं ; यह भी एक स्थिति है । धर्याव की रिपिट के प्राप्यान नैकी कोई स्थिति । किन्तु धर्याव को भावित करने के लिए जिन

कास्पनिक प्रतिस्विति का भाङ्गान करना बढ़ता है उसके कारण न तो कला की ही कुछ स्वावित्त्व मित्र पाया है और न कलाकार का ही संतोष । ऐसे लोगों से वे लोग बर्तई धम्की स्थिति में हैं जिनके पास से है कर पीड़ा बची है—रुद बह यची पकर है और वे उठे सुन्दर बनाकर होने के अन्वयासी हा मए हैं—पीड़ा की धन्तहोन बाबा में उसे बीने की घर्त ही पीड़ा ही हो गई है—

धीर कुछ ऐसी बरसी सारी रात धीर कुछ पीट सुहानी होकर निकली
 बहुत धुली धुत धुन पहराई बहरी बिरहा बांस की
 उलझ उलझ बघ तुली संघा सपनों के आकाश को
 रही उड़सती बिबरी सी प्राची बात क्या कुछ धोर कहानी होकर निदली

—हरिण मस्तानी

किन्तु जैसे सपनों के आकाश की संघा का मित्र वैयक्तिक धोर के लिए बहुत दुर का हो गया था—गीतकार को उस पीट को बहुत सवीन से देखना चाहता था उसीए बाँदनी के लिए भी धराकश हठ की मनाही हो गई थी कि वह अपनी सुवसियों । एक साब आकाश तथा बरती के सुख-दुख को बीने बने । गीतकार ऐसी स्थिति में अपने पीटों में धार्मिक सारस्व सुवने का प्रयास करता हुआ किसी प्रावितापरिका के मुख से कहसता है—

सुनते मैं सांगुनी किरल्लों को और पिया
 बांधुपी बंता के और
 मायी की मातर पर मायो का नाम
 धपता निज जाऊनी जारा बरिस्ताम
 बाबर भर सांगुनी कामुन के रज पिया
 कुहपा भर नपनों का तोर ।

—अन्तर्निहित अपाप्पाय—बिरपुर्गंधारि

यहाँ वहाँ भर देहरी तथा बरती पर बिबरा बणय का सुहाय निबरा बाबा अपनी ही बरती के मोह बनता जरे इस स्वार में और सीधा चलत बीठ की धुनों व महक बनी ।

गहरी सी बिड़िया लीये स्वर टैरती
 घुमी बिड़ुड़ी राह बिद्या को हेरती
 मुझ को तता रही है बिना कसूर के
 नील भील में झुकते पाछ कसूर के

—रवीन्द्र भ्रमर

घायाबाद का घाकापी रूपान जैसे भरती के सींचे सीर्य पर निछावर हो-हो
 कर रह गया—बिहाराकुल स्वर्णों में भरते की कोल में ही जग्गा या जैसे वह पीठ—

हिली कहीं
 नीम की बहनी
 मुल गई के बातें सबकी सब
 जो तुमको कहनी
 पल्ल बूटा से घुमी-घुमी
 बली हुआप लीची-लीची
 नार रही हैं जैसे ताने
 कहती हैं जैसे धनकहनी

—परमानन्द श्रीवास्तव

नये बीतों में न केवल राज्य को जीवन का पवास मिल रहा है अपितु उसे
 सद्गम तथा मौलिक रूप से पाड़ा भी जा रहा है। धरर का यह मौलिक सीर्य बिठना
 बीतों में मुघरित हो रहा है उतना कबिता में नहीं या शायद यों कहें तो अधिक घण्टा
 रहेना कि काव्य जेतना में प्राविष्टत कोई राज्य परिषय क स्वरित दोर से बिठना पीठ
 में प्रनुवत होकर नुजरता है उतना कबिता में होकर नहीं। इतका प्रनुवत कारण है पीठ
 में घमों की तुक मुवत प्रभवाकलि तथा लय का सरल प्रवाह। धात्र का नवनीत नीरव
 की बिकल प्रभवाकली को छोड़कर मैदान में उतरी स्वरर्यवा की पावन पाछ के समान
 प्रवाहित है। राज्य के बरबन का कुपग्रह धात्र उम पर नहीं है—बारों के सरल प्रवाह
 में एक बार भावा का जो कसेकर नियत हा गया वही पसका जम्ब हो गया पीर कठी
 के अनुक्य भीत की सृष्टि होती बनी गई। इतके परिचित भी नवनीतकार अनुभूति की
 र्नेदिक मरिपा से धरने को मंडित नहीं मानता। एक बूँद रहता घण्टी' भावक

अज्ञेय की कविता इस बात की ओतक है कि कोई भी पीतकार रसिक होने का दावा करे वसते पूर्व उसे व्यक्ति-समष्टि के प्रभाव अभियोर्तो से अपनी अनुभूति का सजग हृद्य होना आवश्यक है । अपनी अनुभूतियों के साथ वह मनमाया बेस नहीं रखा सकता । जिसकी सफ़ाकारी से मात्र कोई पीतकार अपने को प्रकट कर सके वसना ही वह नया होना । अज्ञेय की सदा प्रभावित रचना इस संदर्भ में हृद्य है । भविष्य के तीत को कुछ ऐसी ही यौगिक बदलावना सरसता तथा तन्मयता की मनेला है । यथा—

कुछ रहा हूँ मैं,
 स्वयं जब कुछ कुछ
 तब भी जब रहे की बात
 (बात ही तो खेती ।)
 वही को कहूँ
 यह सनाबना, यह निवृत्ति कवि की
 लहूँ ।
 उतना भर क्यूँ
 इतना यह सङ्ग
 जब तक कुछ
 (जब रही जो बात)

—अज्ञेय



शीत की प्राचीन परिभाषाओं देखर मैं यहाँ विषय को खींचना नहीं चाहता । लेकिन जब तक पीत के प्रारंभिक रूप से लेकर अनुगतत उपबन्धियों पर एक तरसपी मकर न मात्र ही साथ तब तक नये पीत की आवश्यकता तथा अभिव्यक्ति पर पूरा प्रकाश पड़ना कठिन हो जायेगा । पीत की परंपरा जीवन जिसकी ही पुरानी है । बेदों के श्रुतियों से लेकर बचन तक, तथा नरेन्द्र शर्मा से लेकर मोय प्रभाकर तक पीत अपने विचित्र रूपों में भारतीय प्रववा द्विती कविता के लिए एक उपलब्धि का विषय रहा है । काव्य की एक अपूर्व विधा में पुरानी से पुरानी संवेदनार्थ, संशोर्ध मापुकता से लेकर अनुगतत संवेदना, शैक्षिकता, वैचारिकता और व्यंज्य शक्ति सभी सम्बन्धित पुरी तीमता से उभावर हुए हैं ।

1 कविता विरोधियों की एक श्रृंखला ने इन्टर पीठ को प्रिन्सिपली विद्या के रूप में स्वीकार किया है जिसका प्रतिपाद विद्वज्जनों ने मीन रहकर किया है। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि इस प्रकार के करतब किसी भी स्वल्प परवरा को धाये ही बढ़ाते हैं। किन्तु यह भी तथ्य है कि पीठ के विषय इस प्रकार का विरोधी प्रचार एक हद तक सही भी है। जिसके परिष्कारस्वरूप नये नाम्म समीक्षकों ने कुछ कमजोर पीठकारों के इसके-सुन्दरे पीठों को लेकर ही अपनी धामोचना का विचार किया है। संभवतः उन्होंने ऐसे ही पीठ बड़े हैं अपना साम किये जैसे कियो कवि सम्मेलन में जाकर अपनी धामोचना की प्रेरणा भी है। जगदी माग्यता है कि धातुनिक पीठ में ब्याच के प्रति प्रतिबद्धता नहीं है, नई संवेदनार्थी पीठि खेमी में अधिम्यक्त हो सकने में अक्षम हैं। ऐसे धामोचक धगर विरिजा कुमार माधुर, संभुतापतिह परमेश्वर मारतो, बाजस्वरूप राही सुरेन्द्र विहारी तथा नरेष सखेना के नये पीठि प्रयोगों पर नजर डालते तो उन्हें कविता धीर जीवन के प्रति इतना निरास न होना पड़ता।

इससे, धातुनिक युगबोध को देखते हुए नये पीठकारों के लिए धामोचक वा कि वे सधियों पुरानी जमी धा रही परिपाटी से अलग इतर पीठि रचना में सतम्न होते। वर्तमान हासोमुग्धी सम्यता में मृतप्राय जीवन मूर्खों का विशाल धीर छटपटाहट का व्यक्त न होना किसी भी साहित्य में सतिरोध का लक्षण ही माना जा सकता था। जबकि संसार के अधिकांश भाग में एक ही प्रकार की संवेदनार्थी उभर रही है। अकेलेपन की अनुभूति तीव्रतर होती जा रही है बरहवासी मुह बाये राड़ी है मुह की विनीषिका मानव को इतने की ततर है श्रेय सम्बन्धों में अन्तर धाता था रहा है, हिन्दी के नये नाट्यकारों का इस जीवन की अनुभूतियों को अपने हृदित्व में समाना रसामादिक था। यही कारण है कि धाम के पीठ में ध्यायावारी पीठों की-सी धाकाउ-कुसुम के गुमरावे तैयार करने की प्रवृत्ति प्रवर्धितवारी पीठों की-सी नारेबाओ प्रयोगवारी रचनाओं की-सी दुबह धीर परवह अधिम्यक्ति नहीं है। बल्कि धाम के नये पीठकार अित जीवन को धिन रहे हैं जनी की कवित्वमय अधिम्यक्ति अपनी हृदियों में कर रहे हैं।

अन्य क्षेत्रों के विचार में यह बात धर कर गई है कि पीठकार धर रसांन केवल कवि सम्मेलनों के संघ हैं या पीठकार वा कविकर्म केवल संघों पर अंग अिसकर पीठ-नायन कराना है वे अत्र की रियति में आ रहे हैं। हिन्दी के किसी भी प्रबुद्ध पीठकार कवि ने कभी भी अत्र को आधिक्यता नहीं दी है। अल्पन दिनकर, नरेष रापी,

देवी, लाली, बीरेन्द्र मिश्र आदि बहुत से अेष्ठ कवियों के नाम इस प्रसंग में लिये जा सकते हैं । नील को बदनाम करने वाले कवियों की एक बड़ी जारी संख्या है जिसका साहित्य से कोई सरोकार नहीं है और कवि सम्मेलनों के मंच पर जिनकी तूरी मौलती है । नया नील इन कमजोरी से अपना नाम बचाता हुआ चल रहा है । किन्तु इसका तात्पर्य यह न समझना कि नया नील अनोम्मुक्त नहीं है बल्कि वह सही ढर्रों में अनोम्मुक्त है क्योंकि वह जन को पुनराह नहीं करता ।

नये नील ने संवेदना के नये कोशों की प्रतिष्ठा की है । अपने विकासकाल में यह और भी तीव्रता से संवेदना के नये धाराओं की स्थापना करेगा । नये नील से जानकरता अधिष्ठापित मयाह हो चुकी है, उसकी अगह सेती है एक व्यापक संवेदना ने । यह नील में भीषण पुकार की स्थिति नहीं रही । अधिष्ठापित सभ्यता विकलाप संस्कृति और बिलिखत पुनर्भोज ने जीवन के समीप को भी रंनु बना दिया है । इसी कारण नये नील में प्रास के रबठ पास भी बीसे बिसाई देने और प्रथमें एक मय त्यकता होनी । नया नील नये नये के लिये नहीं महसूस किये जाने के लिए है ।

नीं अ्यंय अपने साथ में काव्य की एक महत्वपूर्ण उपमन्त्रि है । अ्यंय सनसावबिष्ट विह्वलकों बुकनताओं, बिसंनतियों का पर्यावास करता है लेकिन मिठांत शोषक रूप से नये नील में अ्यंय का स्वरूप इस तरी से अमर है कि वर्तमान जीवन की छतपटाहट साफ जाहिर होती है । ऐसे नुप में अहां राहें नहीं मिलिन कु मया नये हों, मौलिकता नीलाव हो रही होभीर अनुकृतियों पर फूल बह रहे हों, ईमानदारी की साधों के डेर पर लक्ष्मी का प्रलाप हो केवल संवेदना मिश्रित अ्यंय से ही अपने आपकी व्यक्त किया जा सकता है । रिशभम की यह स्थिति अंश में अ्यंय नहीं जाती छटपट होकर विचार करने को बिचस करती है । सुसी की बात है कि नीलकारों ने अ्यंय के महत्व को समझ है ।

नये नील की रंनानताओं और उपमन्त्रियों की बर्ण करते हुए कुछ महत्वपूर्ण चीतों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता । मैं यहां से नये प्रेस नीलों का हवाला दूना जो एक ही मशीनति में लिखे गये हैं और जिनके रचयिता हिन्दी के दो प्रमुख नीलकार हैं । प्रेस की बदलती हुई मायबत और इदक्य इलयें पूरी तरह मुकुरित हुआ है । विद्युत्ती हुई बिया को कवि क्रिच प्रकार छटपट होकर बिसाई देता है और जीवन की

बहुना पीय इस प्रकार है—

बरतों के बाद कभी
 हम तुम यदि मिलें कहीं
 देखें कुछ परिचित से
 ऐकित पहुँचानें ना ।
 धार भी न माये नाम
 कम, रंग, काम धाम
 तीर्थ
 यह संभव है
 पर मन में मानें ना ।
 ही ना धार एक बार
 धाया तुझाने बहार
 बन्द पिटै पृथ्वी की
 पड़ने की ठानें ना ।
 बातें जो साथ हुई
 बातों के साथ गई
 धारों जो मिली रहीं
 बनकी भी जानें ना

—रूके हुसो का गीत : निरिजामुमा नामु

माधुर के इस गीत में तटस्थता की पूरी कोसिप के बावजूद भावुकता का हमका
 ना पुट धा गया है । धब दूसरा गीत देखिये—

अब क्या हो मुझसे धगर दिया
 तो तुमसे बहुना है बुझे दिया
 कहा कभी मुझसे की
 किसी धम्य भीता से केवल बहु कहना मत
 मेरे है धम्य धारा धैव सब तुम्हारे हैं ।
 कठ गई मुझसे यदि धरमात
 तो तुमसे कहनी है एक बात
 माय कभी रहे कहीं तन दोनों
 साथ धम्य साथी के तिरुँ कहीं रहना मा
 मेरे है डोर, दीप धैव सब तुम्हारे हैं ।
 बिरत तने मेरे यदि तुम्हें बपन
 तो मुझसे सिना है एक बचन
 दिया जित तरह कभी मैंने ना
 किसी धम्य बर्तक की टुपिरी कहीं सहुना बप
 धैव हमनिबतों के धम्य सब तुम्हारे हैं ।

—कभी हुई दिया से बाहसबन राठी

गद्य-काव्य उपलब्धियाँ और सम्भावनाएँ

शास्त्रिकुमार पारस

गद्य काव्य भावुनिक हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है जिसका विकास बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से हुआ है। यद्यपि गद्य काव्य के दोनों सखाहरण हमें वेद पुराण उपनिषद्, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं लेकिन वास्तव रूप की दृष्टि से हिन्दी के गद्य काव्यों एवं प्राचीन गद्य काव्यों में बहुत अन्तर है। संस्कृत में गद्य काव्य सम्बन्ध में अत्यन्त अधिकतर कथा कृत या घास्त्राविका के अर्थ में हुआ है, परन्तु भावुनिक विज्ञान प्राचीन संस्कृतकाव्यों की प्राप्ति गद्यकाव्य की कथा कृत या घास्त्राविका के रूप में स्वीकार नहीं करते। अपने विशिष्ट अर्थ में गद्यकाव्य बहु रचना है जिसमें कविता जैसी संवेदनशीलता एवं रसात्मकता होती है।¹ गद्य गद्यकाव्य अथवा हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट प्रकार की रचना के सिद्ध प्रयुक्त होता है, जो कि प्राचीन संस्कृत गद्यकाव्यों से बहुत भिन्न है। साथ ही इसकी प्रजातता हिन्दी के गद्यकाव्यों की प्रमुख विशेषता है, बहु संस्कृत में गायन नहीं होती। यद्यपि यह है कि हिन्दी साहित्य में गद्यकाव्य का अभाव स्वतन्त्र अस्तित्व है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसका आरम्भ गीताश्रम से माना है लेकिन यदि गहराई से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दशके पूर्व भी गद्यकाव्य गद्यकाव्य के अन्तर्गत दृष्टिगोचर हो जाते हैं। डॉ. विष्णुसायन के विषयगतकार हिन्दी गद्य काव्य का विकास ऐतिहासिक प्रवृत्तियों की भूमिका पर अत्यन्त रूप से हुआ है।² अपने इस अन्वेषण के प्रमाण स्वरूप उन्होंने अनुरोधेन भारतीय तथा अन्तरगत गद्यकाव्य के अर्थों को उत्पन्न किया है। इनमें कोई संदेह नहीं कि 'गीताश्रम' हिन्दी गद्यकाव्य की अर्थक मीठ अन्वेषण रही है पर अन्वेषण नहीं माना जा सकता।

१. डॉ० अन्वेषण अर्थों : हिन्दी साहित्य अर्थ-पृष्ठ २२५।

२. डॉ० विष्णुसायन : भारतीय साहित्य के विकास, भाग २-पृष्ठ २२५।

प्रारंभिक काल (१९१४-२०) के गद्य काव्यों में व्यक्तित्वगत दार्शनिकता रूढ़-
 स्पमपन्नार्थक प्रचलितता आदि प्रवृत्तियाँ ही दृष्टिकोणर होती हैं। रामकृष्णदास की
 'साधना' (१९१७) इस काल की सर्व प्रथम कृति है, जिसके छोटे छोटे गीतों में गद्यकाव्य
 का सुन्दर सुनिश्चित एवं विकसित रूप देखने को मिलता है। 'पीतृबन्धि' से प्रभावित इस
 कृति में रूढ़स्वोन्मुख प्रेम की बड़ी सुगम व्यवस्था हुई है, राय साहब पर रबीन्द्र, कालीन
 विद्यान एवं वास्टस्मि्टमैन का प्रभाव पड़ा है। उन्होंने अपने व्यक्तित्वगत मसकदाव्यों में
 प्रत्येक कृति को साम्प्रतिक रूप देने का प्रयास किया है। इनके मसकदाव्यों में बौद्धिक
 तथा भावात्मक दोनों रूप मिलते हैं। हिन्दी गद्य काव्य में मति-भावना का प्रतिनिधित्व
 करने वाले एक मात्र लेखक विद्योती हरि हैं। उनके प्रारंभिक गद्य काव्यों में बहुत मति-
 भावना प्रदान रही है बड़ी राष्ट्रीय भावना को भी स्पष्ट दिखा है। परन्तु प्रथम दो
 कृतियाँ 'ठंडे छोटों तथा मटाकल' में क्रमशः निम्नवर्ष के प्रति सहानुभूति एवं माँसी की
 के जीवन दर्शन को भी स्पष्ट किया गया है। भाषाएँ चतुराखन में वैयक्तिकता रूढ़स्वमय
 भावना तथा वस्तुवारी दृष्टिकोण की प्रथमता रही है। इस काल के गद्य काव्यों में
 भावानुभूतियों का प्रायः प्रभाव सा ही रहा है। पसस्वरूप जीवन के मार्मिक पलों का
 उद्घाटन नहीं हो सका है। कहीं मतिधम बौद्धिकता है तो कहीं भावुकता। कहने का
 तात्पर्य यह है कि गद्य काव्य अपने सभी प्राणवान् तारों के साथ निरंतर नहीं सका है।

प्रारंभिक कालीन प्रभावों की बहुत सीधों तक पूर्ति करने का योग्य गद्य काल
 (१९२०-२०) के कथाकारों को प्राप्त हो सका है। डॉ० रघुवीरसिंह धीमती दिनेश्वरिणी
 डालमिया, शत्रेय, तेजनाथयल काका माधमभास चतुर्वेरी तथा बेनीपुरी आदि कथाकारों
 ने अपनी प्रतिभा से गद्य काव्य को रूप और रंग दिया है। डॉ० रघुवीरसिंह की 'धिप स्मृ-
 तियाँ, ज्ञान एवं भाषा की दृष्टि से समृद्ध हिन्दी साहित्य की एक प्रमुख कृति कही जा
 सकती है। धीमती डालमिया की कृतियों में साम्प्रतिक भावना तथा पारिव प्रेम की
 व्यवस्था हुई है एवं जन-जन बेत-बुद्ध्या पर भी सैबिका को मनोव्यथा स्पष्ट हुई है।
 वस्तुतः धीमती डालमिया के गद्य काव्य जनजीवन से दूर वैयक्तिक भावनाओं से मुक्त है।
 शत्रेयजी ने प्रथम सेना की भाँति गद्य कीर्तियों के संसार में भी प्रयोगात्मकता लाने का प्रयास
 प्रथम किया था पर वह माने नहीं बढ़ सका। शत्रेयजी के गद्य-काव्यों में भावना की
 प्रवेका विचारों की प्रथमता है। तेजनाथयल काका की 'नदिध' में भावात्मकता, निर्भर

घोर पापाए में विचारात्मकता तथा वैबहुत विद्यार्थी की 'सूलीर में धार्मिक विमलन है । राष्ट्रीय मानकों से घोटप्रोट कृति माधनसात बतुबेदी की 'साहित्य देवता' तथा बलदेव की 'घानू मरी भरती' है । श्री बेनीपुरी की के 'वैहू घोर पुलाव' में धार्मिक व्यस्त जीवन की अटलता से उत्पन्न स्थिति का यथार्थ चित्रण मिलता है । यत स्पष्ट है कि इस काल के कलाकारों में जहाँ एक घोर धार्मिक विमलन प्रबल है वहाँ वृद्धी घोर लौकिक प्रेम की भी सुग्घर ध्वंजना हुई है । नाच, भाषा भाष्यर-प्रकार, विषय, सिद्धि आदि की दृष्टि से यह काल व्यापक क्षेत्र समेट कर जाता है । कहीं राष्ट्रीय मान माए विद्यमान है तो कहीं ऐसीन कल्पनाए, ती कहीं भावों की मर्मस्पर्शिता । वस्तुतः इतमें प्रयागवादी प्रयतिवादी प्रयोगवादी प्रकृतवादी, आदर्शवादी, यथामवादी धार्मिकतावादी एवं अपदेशात्मक प्रकृतियाँ परिलक्षित होती हैं किन्तु रसात्मकता तथा सूक्ष्म संवेदनार्थों का प्रायः अभाव हो रहा है ।

अन्तरकामीन (१९२० ई) मध-काम्य किसी विधेय विधा को ग्रहण नहीं कर सके हैं । राजेश्वरिण्ड रनेहसता धर्मा हरिमोहनसात महावीर धरण, लक्ष्मणसा रेतु रंग नाच दिवाकर तथा अग्निष्ठा प्रसार श्रीबस्तव भीमठी लीठा भटनाकर, लक्ष्मिचोर आदि इस काल के प्रमुख मध-काम्यकार हैं, जिनकी कृतिमें में जहाँ एक घोर नवीन कल्पना विधान तथा नाच गोपीर्य के रचन होते हैं वहाँ वृद्धी घोर प्रवृत्त भाकांसा तथा पलायन कृति के भी । महां यह भी स्पष्ट करे कि यह पलायनकृति प्रनासा सुबक न होकर घास्ता की घोर प्रतिगीत है । विगत २० बरों के इतिहास में कृष्ण महारणुर्ण उपनमिधा इत क्षेत्र में प्रवरण हुई है जिस पर हिन्दी साहित्य को गर्व है । किन्तु इत दणक में मध काम्य के क्षेत्र में पर्यावरण की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है ।

इस पर्यावरण का प्रमुख कारण मध-काम्य में धार्मिक नवीन संवेदनार्थों का अभाव ही कहा जा सकता है । मध-काम्य पुन की मौन को पुरा करने में अलक्ष्य रहा है । अधिकांश मध-काम्यों में आत्मा-परमात्मा ब्रह्म, मोक्ष, स्वयं, मृत्यु प्रेम रहस्य आदि विषयों को ही प्रमुख रूप से विविध किया गया है, जो कि अन्तर्कामीन स्थिति एवं भावा वरण को दृष्टिगत रखते हुए ही अपसुक्त कहा जा सकता है । यद् ४० के परचाए को विरत भावात्मक एकता की आधारकता भी उके पूर्ण करने में मध-काम्य अक्षम रहे हैं ।

विगत हो इसादियों में जीवन के सभी मासदण्ड बरस चुके हैं। यानवीय मूर्खों में अत्यन्त तीव्र वेग से परिवर्तन हो रहे हैं। जीवन का कोई क्षेत्र नवीनतम विचार-काराओं से अछूटा नहीं रह सका है। ऐसे भी कैसे? प्रकृति मानव जीवन का अरम लक्ष्य है। प्रकृति चाहे किसी भी विधा में हो इस बात की ओर संकेत करती है कि हम युव की रक्षार के साक प्राये बह रहे हैं। मैं समझता हूँ कि धाम के इस संवत्सम जीवन में मर काव्य की काव्यनिवृत्ता एवं कोमलता ही काफ़ी नहीं है।

मैंने कहने का तात्पर्य यह नहीं कि काव्य में कल्पना उत्स की आवश्यकता ही नहीं होती। वस्तुतः काव्य की मूल्य ही मानव कल्पना की मूल्य है। विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है। पाठ्यकार्य काव्य अद्यत में तो कल्पना का विशेष महत्त्व है। जेनसपीयर वाट, स्टैबर्ट आदि में इसे काव्य प्रतिभा माना है

An uncommon degree of imagination constitutes poetical genius
—D. Blakely
सैकिल कला का प्रतिष्ठित जीवन को निकट आने से है। ओर जो कला इस महत्त्व कार्य में असाध्य रहती है जतनी सत्ता भी संदिग्ध है। धातुनिक मरिचक्य धाम्यादिकता, सौक्यिकता रक्ष्यमयता तथा उपदेधारमता की अपेक्षा बौद्धिकता के अधिक निकट है तथा नई कविता में इसी उत्स की प्रवानता है। एक दृष्टिकोण से बौद्धिकता की योग्यता ही ताकि कलाकार एक सुबद्ध हुआ स्पष्ट दृष्टिकोण हमारे आसरे रहे, केवल मातृकता ही नहीं।

बचकाव्य और पत्र-काव्य में सबसे प्रमुख अन्तर धार बंधन का है। नई कविता जो कि इस प्रकार के ग्रंथम को स्वीकार नहीं करती, साहित्य के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण काव्य क्रांति के रूप में प्रतिष्ठित प्राप्त कर चुकी है। भारत में धातुनिक हिन्दी काव्य की प्रतिनिधि 'नई कविता' है, जिसमें बचकमता अनेकानुक्त अधिक है। ऐसी स्थिति में मर काव्य की संभावना का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। धातुनिक नवीन अनेक अनाओं के अभाव में बचकाव्य जनता की प्रतिनिधि को बनाने रख सकना या नहीं यह एक विचारणीय प्रश्न है।

बचकाव्य की सबसे प्रमुख विशेषता उसकी कोमलता है, जो निश्चित रूप से हृदय के अधिक से अधिक निकट के आती है। सैकिल कमी कमी यही कोमलता इच्छि बुद्धिसत्ता बन जाती है, जबकि यह जीवन से दूर बना जाता है। वस्तुतः अद्यत यह है कि नई कविता की प्रतिष्ठित बौद्धिकता तथा बचकाव्य की प्रतिष्ठित मातृकता दोनों का समन्वय आवश्यक है। दोषों के दोष का निवारण इसके सामने ऐसे मुकदमों से ही नहीं हो सकता बल्कि जिनसे तो जीवन की अन्तर्गत आवश्यकता है। अन्तर्गत ही अनुभूति की भी है। अतः जब तक नई कविता में मातृकता तथा बचकाव्य में बौद्धिकता का समावेश नहीं हो जाता, तब तक दोषों की अछूतासंदिग्ध है। दोनों उत्सों के अछूत समन्वय में सविष्य निश्चित है।

बचकाव्यकारों से यह आशा की जा सकती है कि वे संकरी राह को त्याग कर इसकी राह में एक नया मोड़ लायें। जिस अद्यत जीवन अछि का बचकाव्यों में अभाव है उसकी पूर्ति करें। भारतीय जीवन के साथ असाध्य होकर ही साहित्य की यह महत्त्वपूर्ण विधा अपना स्वाभिन्न कायम रख सकेगी है।

कर बाबाल्यक निबन्ध, बच गीत या बच काव्य रसात्मक वाक्याविका यादि विधाओं में
 ; व वाचना का विनियोग, विविध धनुषाओं में रहता है पर भीत में कथावित्, यह
 लोय, प्रात्मिक तुष्टि की दृष्टि से, सबसे अधिक पूण रूप में रहता है । एक सफल
 ; सुस्मृतय चित्र व वास्तव-तुष्टि की एक ही साधन समेक्षा रहता है । जो भीत इस
 सा की जितनी ही सहज सुन्दर रूप में पुष्टि करने का प्रास्तावक देता है वह साहित्य
 एक मनमोहक यष्टि बन कर अतागिर्यों तक सङ्करो की चेतना-तरंगों में सङ्गता रहता
 । रसात्मक मानव चेतना ऐसे भीत के रूप में नामों प्रपने विकास की एक यष्टि को
 व नहीं रहती है । येष्यम भीतों के सृजन से चेतना चारा एक स्वल्प स्वर्ण की प्रशिया
 वाचना के चरम भावों की ओर निरन्तर प्रवहमान रहती है । इस प्रकार एक अन्त
 ; मानव चेतना की विकासोत्पन्न चारा का एक मान बन जाता है ।

अन्त में, हम कह सकते हैं कि अक्षयपूर्ण व सुन्दर रचना-चित्त व तमीर व
 पुरबकर प्रात्मनिर्घृण (पाठक या श्रोता के पक्ष में प्रात्म-तुष्टि) से दोनों भीत के
 लोचनवाचक हैं । हमने ऊपर भीत में शौचिक व मादामक तुष्टि के एक ही साधन
 यष्टि होने की बात कही है इसका जोड़ा विषयीकरण आवश्यक है । गीत के द्वारा
 वास्तविक तुष्टि की बात ही स्पष्ट ही है । शौचिक तुष्टि के विधान पर कवि यज्ञ से व
 ता-पाठक यज्ञ से—दोनों यज्ञों से विचार किना जाना चाहिए । रसात्मकता और भावुकता
 । यह अर्थ नहीं है कि कवि यथा पाठक-श्रोता बुद्धि विवेक हीन होकर साहित्य-वाचना
 लीन रहते हैं । ऐसा सोचना एक भयंकर भ्रमि होती और साहित्य के महात् स्वल्प
 र्थ और पञ्चरि के प्रति अनभिज्ञता । साहित्य में बुद्धि का उपयोग होता है किन्तु रस
 व भावना के प्रासन में । सृष्टा कवि की बुद्धि काव्य प्रशिया में दो स्तरों या धरातलों
 पर काम करती है—स्वापन के और विचार या चर्चन यज्ञ के विधान में । पावा
 र्थ व धर्मकार के विधान में कवि-बुद्धि वास्तव्य सुदम रूप में सम्यक सञ्चि रहती है
 र्थवा रचना के स्वापरय व रूप कभी भी सुबोध व वस्तु के ठीक अनुकूल न बने ।
 उपर विचार व दार्शनिक भावनाओं के प्रकाशन में ही कवि की बुद्धि का ही प्रदर्शन है,
 य में दोनों स्तरों पर बुद्धि अन्त-अभिज्ञा को उच्छ्र प्रद्वन रह कर बड़ा महीन संयोजन
 प्रवस्थापन करती रहती है । इस प्रकार समस्त सृजन-व्यापार में कवि की बुद्धि का
 ही प्रदर्शन या विनियोग होया है । हम यों नहीं कह सकते कि अन्त सृजन भी कोटी

धाम्यकता है : जिस भीत का बौद्धिक स्नायु वायु बिलना ही व्यवस्थित होना उठना ही
 वह भीत शिकाऊ, पुष्ट व प्रमदियु होना । कोरी पित्तपित्ती धाम्यकता कभी भी भीत के
 रूप में अव्यभिक्त भी होकर (बोधा देने का प्रयत्न करने पर भी) बौद्धित कलात्मक
 प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती । भीत में बुद्धि उत्प के प्रयोग के सम्बन्ध में यह बात
 मन्त्री उरह ध्यान में रखने की है ।

खबर सन्धे भीत के पाठक भी धर्म धाम्यकता के जनासक नहीं होते । वे भीत
 की कक्षा व उसके वर्धन की भूमि पर कवि हृदय से भेंटते हैं व इस उत्प के सम्बन्ध से
 विशेष तूह या मन्त्र-चमूद होते हैं । स्वर्ण योता-पाठक को भी धर्म-बोध, बसया-व्यंजना
 व कल्पना के जरातल पर अपनी निजी बुद्धि की पूबी का परिचय देना पड़ता है । इस
 प्रकार धर्मयुत बुद्धि व्यापार करता है वर कता कि प्रक्रिया से धीर रस के प्राशन में ।
 कहने की धारणकता नहीं कि बुद्धि उत्प को स्वीकृति से ही भीत तुदीन पुष्ट व कीर्तियान
 बनता है । बुद्धि उत्प के समुचित समावेश से ही वह समस्त धर्म-कारण के सन्धे प्रति
 निधि के रूप में बाहर प्रवर्तित होता है ।

भीत रस के संदर्भ में विशेष रूप से विचारणीय है । रस के स्वरूप के संबंध
 में कहा गया है कि वह धमीभूत या साग्र व धर्म्य होता है, धाम्य की प्रकृति के
 सत्त्विक के उत्पन्न होता है धिम्य व वैशाखरस्पर्तसुध होता है वह-हृदयान्तरहोकर
 रूप है, कक्षकी धनुभूति से धात्वा का धर्मानावरण छट जाता है, चर्बखा के हात
 धसका पुन-पुन धनुतमान क्रिया जाता है धारि । ऐसे रस का धनुभव साहित्य की सभी
 विधाओं में से केवल भीत की विधा में ही सर्वाधिक सम्भव है । रस की वह धनुभूति
 धिज की सभी कृतिओं के द्वारा साध्य नहीं है धतः धमिधनुत जैसे रसतत्त्व
 धितकृतिओं के प्रकार, वेद व संख्या को महत्त्व नहीं देते । कबकी दृष्टि में सभी प्रकार
 की धितकृतिवा धात्वा में विभाित हो कर रस रूप में धरिण्य होती हैं । केवल 'शु नार
 वा केवल 'कस्यु' या केवल बीर में ही रस का धनुभव करना हमारी धुरी सद्भवता का
 धरिधापक नहीं । धेव साधना धिय व धनुत, दुःख व सुख, धनुकूल व धितुल सब में
 साधरस्य स्थापित करके जीवन के धखण्ड व व्यापक रस की धनुभूति में धित्वाध करती
 है । इस दृष्टि का भीत के रस विचार से सीधा सम्बन्ध है । केवल 'शु नार रस वा
 केवल कस्यु रस वा केवल बीर रस ही नहीं ? सभी प्रकार की धितकृतिओं

(स्वामी, मुंबारी माव) रस-कोटि को पहुँचने की पूरी समता से सम्पन्न हैं। इसके लिए काव्य रस के धनुमन्वकर्ता के संस्कारों की प्रबलता और मानसिक भूमिका की बलवता नितांत अपेक्षित है। इसके माध्यम पर बीत का व्यापकतम स्वरूप तभी छाड़ा जा सकता है जब हम नहीं देखें 'अबम बारम्बार', 'मन मस्त हुआ फिर क्यों बोले' (गिरी में तो बरस दिवानी) 'अच्छ यह मधुमय देण हमार' 'सब बीबल बीठा बाठा है, पून छाँह के बेल छहच।' 'घण्ट पून की ब्याम महरिया' 'सुख पाही मरानी', 'भीसाबाबिनी बरै।'—आदि सभी शीतों में समान भाव से पूर्णतम रस प्रकृत करने के लिए तयार हो। रसानुभूति काम में चित्त की तीन स्थितियाँ होती हैं—द्रुति वीरि और म्बलम्बल। यद्यपि वे तीनों स्थितियाँ साहिर्य रस के बहि मे परिमणित रसों के साथ पृथक्-पृथक् करके देखी जा सकती हैं पर इसमें कोई संशय नहीं कि पूर्ण सहस्रम बही है जिसमें तीनों के धनुमन्व की सहस्र समता हो। काव्य में जब धारणा की पूणता का पूरा आस्वादन है तो तीनों का समवेत सम्पादन ही आवश्यक है। इस दृष्टि से बेचने पर सभी रसों के शीतों में धारणा का पूर्ण प्रकाशन सम्भव है। अतः शीत को किसी रस विशेष से ही संयुक्त करके देखना बहुत उचित होगा। लोकोपीठ—साहित्यिक गीत, छान नवा-हृद पाया पाठ रस—मृगार रस बने व्यावहारिक श्रेष्ठ बहा मित कर रचना गीत गन रह जाने—वही गीत की प्रकृत युनि है।

इसी प्रकार गीत का 'बन्धु' या 'बस्तु' भी महत्त्वपूर्ण है। यह ठीक है कि शीत में भारी तरकम बौद्धिक या दार्शनिक विचार-सामग्री न हो क्योंकि शीत जैसी कोमल रचना के लिए यह सब कुछ बने बलना कठिन है। पर यह समझना भी कदाचित् अपूर्ण विधान होया कि गीत में हमार सुख मन के व्यापाम के लिए भी कुछ न हो। बस्तुतः तमिळ साहित्य कल्पनात्मक पुनर्निपाण है जिसमें रचयिता के पक्ष में तो विधायक कल्पना और रस मोठा के पक्ष में वाहक कल्पना की नितांत आवश्यकता होती है। रस-वाहक यदि बहिम रूप से रस-बहण न करे तो उसे वह या बँसा धामन्य नहीं प्राप्त हो सकता बसा किन मन नवा भन करने जाने को चाँदनी रात में। उदात्त यह कि शीत की बस्तु प्रकृत इतनी शीटिक हो कि पाठक की कल्पना अत्र पठना बहा कर जीवन का स्वाद से। निष्कम्य है रह कर, धरस कल्पना से, बाबी ली या सुख बँती मिश्रत्व बस्तु से (जसे ठंडाई धन चुकने पर शीत बचा हुआ सुगन्ध) कीन से सन्धे व नमीर रस की प्राप्ति होती? शीत के प्रकृत या वाचन के साथ ही हमारी चेतना की दृष्ट व स्फूर्तिवान

बनाने वाली कुछ सूक्ष्म सामग्री भीत में प्रवेश ही वांछित है। वीथ रस के आस्वाद-काल में यहूदक पाठक रचना-मग्न सत्त्वशील वस्तु को या उरवोपक सुन्दर कल्पना विषों या सुन्नी की वर्षण करता रहता है। यदि संस्कारी पाठक के लिए वर्षणा के योग्य अवयुक्त सामग्री प्रदान न की गई तो भीत पररक्षणीय क्षिप्त नैव कष्ट या रेंवता हुआ या निरुत्त भावना; अथवा कोई विशेष प्रमाण वीथ नहीं छूटेगा। यस्तु ! वस्तु ही पाठक में बाँधित कल्पना के स्वरूप मुस्य व स्तर को निर्धारित करती है मग्न इस दृष्टि से वस्तु व कल्पना परस्पर अनिष्ट रूप से सम्बन्ध है।

मोती के बनने के लिए सीप ही चाहिए और वीथ के पोढ़ने के लिए खव ही। निरुत्त ही स्वच्छर अन्ध के सम्बन्ध में बहुत से तर्क-बानदार व तर्कन स्वीकार्य हैं पर वीथ के सम्बन्ध में तो वे तर्क दो पय भी नहीं लेते। वीथ यदि वीथ है तो यहूदकों की जिज्ञा की स्तिग्न सीबियों से मुन्नों तक बनना चाहेगा। रबड़ अंर कंधारु अर, कंधुभा अंर म्हा व्यावा कारमर न होवा। कोरा लय का आरबासन भी बाट नहीं बनायवा। वास्तु छिटमेन या कमिन्ध की काटीगरी से कबीर मीथ या सूर दुसठी के वीथ इम तक न मा पाते यहू बाठ वीथ बिधे अीक है। घाटिर अंरों की नियमितता कोई इतनी पर्याधिक वस्तु नहीं। भाप के घारोह धानरोह के अनुस्य कटाव-अटाव वाली वल्लिवा लय के बस पर बाह्यार्थ निरूपिणी कविता या सामान्य उच्छुभासमय वीथों में मन्ने से बस तकती है, पर जिस भाप या अक्षुवास की यावा मग घोर काल पर व्यापक घोर लम्बी होती है। अथमे सम्बन्ध धार्मिक टिकाक, विरुधनीय व स्वाधी चाहिए। लय ही नहीं अन्ध के परसों की भाप व निरमित काट अाँट अेठ व अटात भाव के बीधे जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भाप इस व्यवस्था को अस्वामाधिक नहू कर धलय नहीं कर सकते। मनुष्य के मन को एक प्रकार की नियमितता भी आरबासन का मुख देती है। काम्य में भी जीवन क इस आरवत नियम को मान लेने में धाय की रसा दिघाई पड़ती है।

वीथ क मूल स्वरूप के उरबाटक भाव धपनी ही धनुरंजना को मानवच्छ बना कर वीथ का कधिरे विम्यमूलक आरसें तेमार करते हैं। वीथ बैसी स्वच्छन्द व आना निर्यजन प्रयाग रचना इस प्रकार के आरसे-निर्माण को स्वभावतः ही बढ़ावा देती है। पों किसी विधा के स्वरूप को लेकर विभिन्न विचार-उरलियाँ बकती रहे तो कोई हावि भी नहीं—वे स्वतः धपनी स्वस्य स्वर्ता की अरम परिलक्षि में कोई उर्यमान्ध वा बहुमान्य स्वरूप अघार कर रहेगी। पर व्यवस्था व प्रणालिका का प्रेम ह्ये धार्मिक धेदंवात् बनने की सूट नहीं देता घोर अोस विन्दु की भी भाप काट का आह्वान करता रहता है।

कलात्मक सुपना रस की व्यापकता, धार्मिक पूर्णता व तृप्ति—इन मुख धापाटों पर वीथ के आरसें रूप का अरबाटक विमलन मनव का एक रोचक विषय है।



सीम गीतकार

गीत नए गीत के सन्दर्भ में



कन्हैयालाल सेठिया

मैं अपनी सपुता पुकता से,
घनघन अतिथित पत्रकार,
संभिल के मीठे सवने ही—
सब कहता—मेरी बय बारा ।

अपना के संभव बोक में विवरण करने वाला, अपनी जिज्ञासु चिन्तना से
बच, घम्बर और सृष्टि के अन्त-अन्त्यत कर्तों की दार्शनिक दृष्टि से देखकर उसे घन्टा
की बहुरंगी भाव तरंगों की कुझारों से सुन्दर बर्तों कर प्रसिद्धि देने वाला, अपना के
घनों को बुन कर उन्हें रेशम-की चिन्ती और किरमी सी तरस-भापा का परिधान
बहिनाने वाला भीतरकर कुछ ऐसा दिख उठता है, कुछ ऐसा-सा वा उठता है कि घासो-
पना करती कबय मुझे प्रसन्न कर उठती है— “क्या चिन्तीमे इत पर ?”

मेरी घासोपना-कना बुद्धि उचर देती है “घासोपना और क्या ?”

‘क्यों ?’

“क्योंकि ‘प्रतिबिम्ब’ के नायक कवि ने कुछ महत्वपूर्व किया है। वह मोलिक है
अपनी तरह है।” घासोपना करती कबय द्विचिन्तीवादी है अथवा को उचरती है।
‘घासोपना बुद्धि बुबाच प्रसन्न करती है ‘क्या हुआ ? क्यूँ क्यों ? यह द्विचिन्ती क्यों ?

“द्विचिन्ती-बचत के लिए नाम अतिथित-सा है द्विचिन्ती वाले बर्तों की छोटी बात
तो बुनने के घाटी है, पर छोड़ों की बड़ी बात भी उनके कानों से नहीं टकपती।”

आलोचना करती कलम मुन्कराकर उतर देती है ।

बर्ष गिपेस रत्न-सी धपलधर आलोचक -मना-बुद्धि धिकापत करती है वह तो बुध है । वैसी! कवि का शब्द है 'बिम्ब की आलोचना 'प्रतिबिम्ब' -ही करेवा-हृदय की सुखा को पलकों में भर कर इसमें निहारिये तो निःशब्देह आपकी स्वस्व मुन्करता का सखी हो सकेगा ।'

आलोचना करती कलम स्पष्ट ब्रह्म करती है 'हृदय की सुखा को पलकों में भरकर अनुभूत किया है ?

"हां... क्योंकि कवि स्वयं सिलता है 'धीरों का मृत्यांकन अपने नामक से है भूष ।'

"तब ?" आलोचना करती कलम कवि की अन्वेषण विह्वल बुद्धि की तरह धिकामु हो चुसती है ।

आलोचक-मना-बुद्धि उदस्य भाव उतर देती है, 'तब क्या यह सब है 'प्रतिबिम्ब' के पीठों की अनुभूति-महानता शार्पनिक बर्षस-पावन मद्भुत है । मंथिल नीठे लघनों के बम्बनों का बंदी, धवनी धर्तृमुखी सावना बर्षा से कल्पना में जीवन परा बर, धम्बर में धर्मिबल्ल धौन्व्य को धारवसात् कर, धन्तः भाव विस्फोटन से र्ध में सौम्यता तथा मार्म्भियं जाला है । मुकरित धाकर्षण की ऐसी धालीन बर्षा हाठी है । तन्म्यता धौर धार्तक दोनों भूष मिल जाते हैं भावा सुनहरी, लभिककन ह्ये किसलती है:

तस्य धरा के धायव में है,

बेह-बेह के बन्धन

किन्तु कल्पना बिना धबुरा

लगतता जीवन बर्षन ।

कारण ? क्योंकि अन्वेष की परिभाषा धन्त के शालों में स्पष्ट है, धरीय व प्रेरक धालीय है । बर्षोठि केवल कंठ ही लुचित नहीं है बल्कि नीर भी प्यासा है । बर्षोठि विरह के बहारे ही धर्मिताया लीधित है ।

"कित बिम्बों को यह प्यास सूती है ? किन्को यह विरह संभिता धर्मिताया भावना सिल करती है ?" आलोचना करती कलम धरे धानुक धर्मिसर्षोठि की धीमा व सूते कल्पन को 'लोच' करती हुई लोधी ।

भासोचक मना-बुद्धि इत-क्या हो गई ।

भासोचक मन बोला कवि के पायुक्त धन्तर की संवेदित तरबें, कल्पना लोक से छात्र-श्रु मार ता मठिमय वेम गीतों की बहुरंगी, बहुविधयी मटाए बिचयी और मनुष्य पुहार से मन को भिबो देती है । मन्दा इन्द्रबभुयो प्रभावो स नर जाता है ।

भासोचक बुद्धि बोली, "रचन को धासम-साए कर ठिरकी बुद्धि से तर्क-मूर्ख सभय सुचिच्यों सी काम्य-कठरलें धदभुत रूप से प्रेषित करता है कवि । घरा और मानव की पीर नी देता है । वह तार्किक इस तरह से भी ही जाता है: सत्य-वह मुठ है जो मन्त एक निय जाय निरम-वह नाच है जो स्वयं से एक काम बिभव-वह मटना है जो निरुत्पाद पटी हो; व्यक्ति-वासना का म्पाजमय व्यवहार, मूरपु-वह बभ्य जो घबने सभ्य को पा मया हो ।

भासोचना करती कबम सीम बडी, कु म्मा कर म्भय करती हुई बोली "प्रतिबन्ध का स्तुति-मुहाए लिख रहे हो क्या ? कन्हैयाबास धिठिया माभ तुम्हें कवि सने ? कहीं कुछ लिख ।" कबम ने वाक्य पूरा नहीं किया ।

भासोचक बुद्धि बोली "तुम्हें रोपों से पतसभ है या ? यही कि भासोचना के घसपी माने हैं, कवि को वाक्यों की मार दे-देकर घसकी जात निकाल देना जैसे पहले काम्य बिचकर कोई मसाम्य मपराम कर दिया हो । जलो यह भी सही ! रोप है, वाकों की पुनरावृत्त का । दुसरी घापति तब होती है जब धेठिया जी घपनी सहबठा को छोड़ सीमा-मन्वु की बमलारी बपमाएँ और फरिदारी बापा ये बहू की बीचा-ठानी करने लगत है- पुढाबों के बनीये में बमाने के बस्य देखने बपते हैं । भीतों को 'कबुतर' बना घाबमान के दुम्बत से उमर बकाकर 'मुट्टरु-मुट्टरु' करवाते हैं । बात तिर्क हपनी है कि रचनाओं को घृजन-काम के संघर्ष में रख कर तात्कालिक हिम्मी गीतों की तुलना में बिठकर परबा बाते तो निरिचत ही से धेष्ठकवियों की पंक्ति में रखी जा सकती है । कवि का रोप है कि वह प्रचार के तरीके नहीं जानता पीर दुसरी बात कि राबस्मान में है बही के भासोचक-भद्र बपस के रलों को देखने के बबाव दुसरो की बगलों में बनी पिठाबों में बोधित बीचछायों को अपनी डापटरी-ठहनाई में कूकने और उसकी निताधित करने में घपनी बहसबानी समझते हैं, बाकिर शीतों को संकलित करने या 'कस्याए' में सैब लिखने में दिग्बजता समझी है- बभ्य है वे -- -- ।

कैदारनाथसिंह

शोध निर्देशक सम्पादकों द्वारा विभिन्न 'समवेत' से कहीं अधिक कम्प्लेक्स शोध शार्कस्य स्पष्टता है नये शीतों और पृथगे शीतों में । नये शीतों का सुजन और विस्तृत-सम्बन्ध स्पष्टीत अविद्यत शीत मानवश्यों की प्रतिबिम्बितस्वरूप उतना नहीं है, अतथा बदलते हुए परिवेश बुध-शोध एवं परिवर्तित कम्प्लेक्स संवेदन के कारण है । नयी कविता ने बढ़ते हुए शैक्षिक वैज्ञानिक दिक परिवेशों का अनुवादन किया एवं व्यक्ति के दृष्टे और जनके अनुभूत को उनके सम्पूर्ण अन्तःकरण और अन्तःविरोधों के साथ कविता स्तर पर कहा है । नये शीतों में अन्तःकरणिक की संश्लेषिता ही अधिक अभिव्यक्त हुई है । इस कारण बुध-शोध को आत्मसात कर उसके अमानान्तर चलने में नये शीत कभी नयी कविता की तुलना में एक चरण पीछे है । नयी कविता वैसी शैक्षिकता का अन्त और शोषण नये शीतों की प्राप्ति अस्पष्ट नहीं है । जहाँ उल्लेख है जो उन्हें अपनी कम्प्लेक्स एवं विस्पष्ट स्तर अस्पष्टिकों द्वारा नुयने शीतों से पूरक कराए जाने पर भी एक स्तर पर अन्तःकरणिक रखती है ।

नये शीतों का अन्त नयी कविता के साथ ही नहीं उठता है किन्तु अन्तःकरणिक अन्तःकरणिक में भी नहीं उठता है । नयी कहानी और नयी आलोचना के अन्तःकरणिक के साथ ही नये शीतों का अन्तःकरणिक बना है । नये शोध अन्तःकरणिक करने में नयी कविता अन्तःकरणिक परिवर्तनता नये शीतों में दिखाई नहीं देती ।

अन्तःकरणिक अन्तःकरणिक शीतों पर विचारणी करते समय उनका सम्बन्ध शार्क अन्तःकरणिक से निरन्तर ही जोड़ने (अन्तःकरणिक शार्किक दृष्टि से होता है ?) पुनराव अन्तःकरणिक, अन्तःकरणिक विचारणी एवं हिन्दी तथा हिन्दी से अन्तःकरणिक परम्परा का अन्तःकरणिक देते हुए (समय समस्त हिन्दी शोध अन्तःकरणिक में यह दृष्टि अन्तःकरणिक है) के अपनी शोध-दृष्टि से अन्तःकरणिक अन्तःकरणिक करते हैं । अन्तःकरणिक सामग्री से अन्तःकरणिक-विचारणी विचारणी की उल्लेख विचारणी का शोध-पुष्प भी अन्तःकरणिक है । इस अन्तःकरणिक में अन्तःकरणिक अन्तःकरणिक ही है ।

विद्युत् नये शोधकार्यों का अन्तःकरणिक अन्तःकरणिक है, जो अन्तःकरणिक नयी कविता अन्तःकरणिक रहे हैं के ही नये शीतों का भी सुजन कर रहे हैं (अन्तःकरणिक नये कवि के लिए यह अन्तःकरणिक अन्तःकरणिक नहीं है) किन्तु नये शीतों में अन्तःकरणिक अन्तःकरणिक (जो अन्तःकरणिक

बार प्रतिवार प्रयोज्यारी मात्त्रिकता से निरूप्य ही नितात्त भिन्न धीर म्नीनी है)
 के पुनर्बोध के सुतते घायामों को सहज होकर नहीं यह पाया है । यही कारण है
 कि लोक गीतों की लक्ष्यमी 'कायदे की खोरियां' पुराने खेदे की 'तरकारी बेचने
 वाली बीकानेरी मात्त्रिन' से घाये नहीं बह पाई है । नये गीतों के संदर्भ में बमबीर
 भारती की बर्चा बँसी ही लयेनी । बँसी कि किसी पुष्य मुहूर्त में 'गुनाहों के देवता की
 र्ण 'खीरोबी धोखें पर बर्नाह बिम्बवी बहू घावरी के पिछड़े अनुसूत की—समयवस्का
 लसमें लुझी लखनी नहीं है । ऐसे या इस जैसे गीतों का अनुसूत या तो घायामारी
 ब-ममिध्वन्ति का स्मरण करता है या फिर उसमें मात्र लफ्फामी का वैचिष्य
 टपत होता है । 'नाएबत के पृष्ठ पर रबबी हुई 'बाँसुरी' हिम्बी की मध्यकालीन
 प्राकृतिक युग-बोध के संदर्भ में प्रोछे) बोधारमकता का ही प्रतिनिधित्व
 लो है ।

अब तक विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में नये गीतों के नाम पर पुराने गीतों की ही
 प-बोध लखती रही है । 'बासली' का नये गीत-स्वर' बीरेग्र मिय का निरन्ध
 : 'नाप-बोध' का प्रच्छा नमुना है । कुछ कवियों ने पुराने कथ्य एवं गीतबोध को
 : चिन्व में गहने का प्रसफ्त प्रयत्न किया है । नये गीत परम्परा से हटकर नये युग
 ल के गहरी है । यद्यपि याभात्मक कथ्य में के बहूत नहीं है—बहरहाल ।

नये कवि केदारनाथ सिंह के गीतों की सघटा धीर कीलकता उसे बूढरे गीत
 िवियों से पृथक करती है । उसके गीतों में सत्रय कमानियत अनुसूत है इस कारण
 ैदिकता की प्रपेता भाव-बोध की लकीरें ही प्रथिक गहरी हो उठी हैं । लपारमकता
 ी मात्त्रिकता कवि को प्रनीष्ट नहीं है होगी भी नहीं बाहिए, उसकी ध्वंजनारमकता
 एवं स्वय ही कवि के गीतों का वैचिष्य है । इसीलिए कवि पंक्तियों के धार पर
 वैधिय ध्यान नहीं देता । हिम्बी काव्य शास्त्री कवि की इस सापरवाही की कदाचित्
 प्रसाम्य समझे । कवि द्वारा शब्दों या वाक्यों की पुनरुपुत्ति करने पर यह सविस्त्
 ध्वंजनारमक लय-लवरा पाठक के बोध में हूह्राते बरसाती जाने के समान सघब पुनल
 करके एक 'ध्वनि बेकसूम' का निर्मांल कर देती है किन्तु यह ब्रजिमा भितनी भाव-स्तर
 पर बहित होती है, लवनी कुडि-स्तर पर नहीं (अब कि नये गीतों के लिए इस प्रक्रिया
 का बौद्धिक स्तर पर बहित होना परिपक्वता का सामीप्य प्राप्त कर लेता है) कवि
 की इस प्रकार की सघवम्बि 'बसन्त गीत' बँसी रचनाओं में प्रथिक सुताव के साथ

अधिम्यक्त वा सही है—

“ मेरे कुछ का आखिर तुमसे रिश्ता क्या है

यह धाब समझ चुँवा मैं—

इत नाथ मैं सब कुछ, पाओ

घाह सीख ली मेरे भीतर के सब जाने

पाओ, पाओ घाओ । ’

कैबालाच सिंह के भीत का जय बीच उसके नये कवि के—तन्नामान्तर बतला है, प्रथक स्थलों पर स्पष्ट संकेत इस लक्ष्य के नी मिलते हैं कि उतका भीतकार उतके कवि को धामय के रहा है जिससे कवि की कविताओं को उतरतता और प्रवाह मिलता है, परिणाम होता है कि कवि की कविताएं यद्य स्तर तक नहीं पहुँच पातीं—कविताएं ही बनी रहती हैं। सब बीच सोच कबों से किसी—स्तर पर सम्पृक्त होने के कारण कवि के गीतों में ताज्जी और नयापन भरता रहता है, वह उपलब्धि कवि को धनायास ही उतकी कविताओं के लिए भी प्राप्त हो जाती है।

कुछ कारणों से कवि अपने गीत-बोध को अतीत भीत रख से पूर्णतः कष्ट नहीं पाया है 'दुरद्विवा का सुबिबों की चारर मनबीनी' प्रयोग अतीत भीत चेतना के ही अधिक अनुकूल है, किन्तु इत जैसे प्रयोग कवि की भीत रचनाओं में मातात्मक रूप में प्रति स्थूल हैं, अत नवम्ब हैं।

प्रेषण की सहजता और स्वाभाविकता से कवि की भीत रचनाओं की सघटा तो छोपी ही है जगमें कोमलता और आत्मीयता का बिजान भी अरबन्त छीनेपन के लय कर दिया है। नहीं-कहीं यह अमलन बिना साग लपेट की सीबी अधिम्यक्त गीतों के अधिम्यक्त धामान में बहुत कुछ गया जोड़ जाती है जिससे कवि के—परिचित साथ उतके धोर भी सवे हो बटते हैं, 'धामुन का गीत' इही परिप्रेक्ष्य की उपलब्धि को पाठक के अगमुक स्पष्टि देता है—

“ धनयाए भी ये इतने मोडे

इन्हें याए ली क्या याए

के घाते इहरते जने बाते

इन्हें पाएँ लो क्या बाएँ

ये देवू में धाव लता जाते इन्हे चुने में अर लबता । ’

इस बेसी ही व्यक्ति की सहजता कवि को अपिकॉय पीठ रचनाओं में उपलब्ध है। विषय उपादानों और उनके प्रतिक्रिया के चयन में भी कवि इतना ही सहज है। अपने जगद्विक विस्तीर्ण परिवेश के साथ उसके पारम्य सम्बन्ध हैं, फिर चाहे इस परिवेशगत व्यक्तित्व में नर से बेशकन 'कौली बीजे हों, बीरों की बापा हो, चाहे पंडुका का विह्वल हो या फिर 'हितही लपट रूप का 'ठकिए पर विवसना' या इस बेसी और मरवें।

पूणं तटस्थ-राम केदार के पीठों की व्यक्तित्व नहीं ही है यद्यपि यह भी सही है कि व्यतीत पीठ रस (प्रयोबादी गीत बोध भी हवी में सम्मिलित मानना चाहिये) से भी वे परे हैं। केदार के पीठों में व्यतीत पीठ और नए पीठों की संकल्पित पहिचानी का सफटी है। छायावादी पीठ कवि पीठ लय को सुलगुनाता का नया गीत कवि तीरिष्य लस और परिवेश स्थितियों को किम्ब प्रतीक एवं संवरलुकीम लोक छाया चित्रों द्वारा कल्प्य बोध स्तर पर डोहता पड़ता है। यह तथ्य नये पीठ और व्यतीत गीतों की रचना प्रक्रिया का मूल र्थतर स्पष्ट करता है। नय नये पीठों में प्रप्रमुच है, साथ ही नए पीठों की लय जनकी प्रपनी लय है जो बहुत कुछ बीतकर के अनुकूल चित्त तथा बिम्बारमक प्रक्रिया से मनुसाहित रूठी है। नए पीठ का कल्प्य बोध प्रपनी सुविधानुसार प्रबाह, पाँच विषय तथा हठार अन्वय प्रकृत करता है। छायावादी पीठ कवि स्वयं गीतों में एक पदा या नतलभ यह है कि लय नए हंसता रोता या (विवकता भी या) लकी उतके गीत पाठक को हंसते स्मृति में (सिखलना भी इसमें शामिल है)। मैं इस लय बातों की लर्षा यहां पर इतलिए कब रूठा है क्योंकि पाठक नए पीठों के विकास-क्रम में यह रचना प्रक्रिया-मय तथा लय और चित्त मय पारम्य अधिक स्पष्ट रहेगा। केदार के पीठ इस स्तर से किधिए उठे हुए हैं कवि अपने व्यक्तित्व से मुक्त होकर भाव और कुर्षि स्तर पर अनुकूलि बीता है यह पीठ में छायावादीकों की तरह एक वस नहीं है यदि 'पत्र' है भी तो उसकी शैलीमिता, नए अपने व्यक्तित्व का उपयोग प्रेषणीमता में ही करता है।

केदार के गीतों में मानुमिबत तो है ही बोधिका तटस्थ की स्थिति भी कहीं-कहीं नर है चितका धर्ष है कि कवि पूणता धनी स्वयं को सुबन अर्थों में तटस्थ नहीं रच गया। फिर भी केदार के पीठों में दिखने पीठों जैसा गीतामय नहीं है और न ही रोने खींले का छायावादी स्वर। गीतों की पागत कल्प में पुप-बोध के लक्ष्य से

अभिष्मकित वा सजी है—

“ मेरे कुस का बाहिर तुमसे रिझता क्या है

यह आज समझ चुंवा मैं—

इस नाश में सब कुस, पापों

बाहू लीब ली मेरे भीतर के सब पापों

बापों पापों बापों । ”

केदारनाथ सिंह के पीठ का लघु शोध बतके नये कवि के—सामान्यतर शतका है, अनेक स्वरों पर स्पष्ट संकेत इस लघु के भी मिलते हैं कि उसका बीठकार बतके कवि को भाष्य दे रहा है जिससे कवि की कविताओं को तरलता और प्रवाह मिलता है, परिणाम होता है कि कवि की कविताएं यद्य स्तर तक नहीं पहुँच जातीं—कविताएं ही बनी रहती हैं। सब शोध सोक सों से किछी—स्तर पर सम्मुख होने के कारण कवि के शीतों में ताकनी और मनापन मरता रहता है वह उपलब्धि कवि को यथावास्त ही कविताओं के लिए भी प्राप्त हो जाती है।

कुस कालों में कवि अपने शीत-शोक का व्यतीत शीत रख से पूर्णतः कर्म नहीं पाया है 'कुसुमिया का सुबिर्बा की बादर धनवीनी' प्रयोग व्यतीत शीत शैलना के ही अधिक अनुकूल है, किन्तु इस लघु प्रयोग कवि की शीत रचनाओं में सामान्यतः रूप में प्रति स्थूल है यद्य लघु है।

श्रेष्ठ की सहजता और स्वाभाविकता ने कवि की शीत रचनाओं की लघुता ही दी है जन्में कोमलता और धार्मिकता का विधान भी धरम्य शीतना के लान कर दिया है। वहीं-कहीं यह धरम्य विना लान लपेट की शीत अभिव्यक्ति शीतों के अभिव्यक्ति भाषाम में बहुत कुस मया जोड़ जाती है जिससे कवि के—परिचित लघु बतके और भी सने हो बतके हैं, 'कामुज का शीत' इती परिदेह्य को उपलब्धि को पाठक के सम्मुख स्पष्टि देता है—

“ धनपाए भी ये इतने शीतें

इन्हें पाएँ ली क्या बाए

ये धारी छुरते जाने जाते

इन्हें पाएँ ली क्या बाएँ

ये हेतु में पाव लना जाते इन्हें शून्य में डर लयता । ”

इस बेटी ही भविष्यति की सहायता कवि की अधिकांश गीत रचनाओं में उपलब्ध । विषय उपादानों और उनके प्रक्रियों के बयान में भी कवि इतना ही सहज है । अपने वास्तविक विस्तीर्ण परिवेश के साथ बड़े घातकीय सम्बन्ध हैं, फिर चाहे इस विवेकपूर्ण उपलब्धि में पर में बेधनत 'बेटी नीचे हों बीरों की माया हो, चाहे पंहुक र विह्वलना हो या फिर 'हिक्की लपट पूर का 'ठठिए पर विवतना' या इस बेटी और मयों ।

पूर्व तदस्व-राम केदार के गीतों को उपलब्धि नहीं ही है । यद्यपि वह भी उही कि स्मृति गीत रस (शयोनवादी गीत बोध भी इती में सम्मिलित मानना चाहिये) से ही से बरे हैं । केदार के गीतों में व्यतीत गीत और नए गीतों की संकल्पित पहिचानी ना बनती है । छायावादी गीत कवि गीत समय की कुमुनाता या नया गीत कवि विविध रूप इस ओर विविध स्थितियों को विभिन्न प्रतीक एवं संवररुहीत सोक खाकर विनी हरण काव्य बोध स्तर पर डोहता रहता है । यह लम्प नये गीत और व्यतीत गीतों की रचना प्रक्रिया का मूल प्रंतर स्पष्ट करता है । सम गये गीतों में उपलब्ध है, ताप ही नए गीतों की सम उनको अपनी सम है, जो बहुत कुछ गीतकार के अनुसूत, धित्य तथा विस्वात्मक प्रक्रिया से अनुपातित रहती है । नए गीत का काव्य बोध अपनी मुचिबानुसार प्रवाह, वीर, निपण तथा अठार बड़ा प्रहस्य करता है । छायावादी गीत कवि स्वयं गीतों में एक परत का, मतलब यह है कि वह वह हृदयता रीत का (विचरना भी का) तभी उसके गीत पाठक को हृत्साते बनाते थे (विचरना भी इसमें सम्मिलित है) । मैं इन सब बातों की चर्चा यहाँ पर इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि सामय नए गीतों के विकास-क्रम में यह रचना प्रक्रिया-कत तथा समय और धित्य पर पार्वत्य प्रतिक स्पष्ट रहेगा । केदार के गीत इस स्तर से किचिद् बढ हुए हैं कवि अपने व्यक्ति से मुक्त होकर मात्र और बुद्धि स्तर पर अनुसूति गीत है, वह गीत में छायावादियों की तरह एक बख नहीं है बरि 'पक्ष' है जो तो लक्ष्मी शेषक्रीयता, वह अपने व्यक्ति का सम्पूर्ण प्रियस्वीयता में ही करता है ।

केदार के गीतों में मासुपियत तो है ही बोधिका लक्ष्य की स्थिति भी कहीं-कहीं पर है विचरना धर्म है कि कवि पुरुषता अपनी स्वयं को बुद्धत लक्ष्यों में लक्ष्य नहीं रख पाता । फिर भी केदार के गीतों में विचरने गीतों बेसा गीतवान नहीं है और न ही दोने गीतों का छायावादी स्वर । गीतों की सामय लक्ष्य में कुम-बोध से संदर्भ में

तटस्थ रूप तथा बौद्धिक प्रवृत्ति का भी निकपकोण के रूप में उपयोग किया जायना, उसका कल्प-बीजा युव बोध के समानान्तर होया । केदार के भीतर इस विधा में बढ़ते हुए गीत भावियों को प्रथम पड़ाव तक पहुँचा सकेंगे ।

युवक कवि (कामदोर में केदार की युवकों का प्रिय माना है, काहल के अनुसार इस ब्रह्म का क्या अर्थ हुआ?) केदार का मुख बीच भोक तत्व से प्रेरित है; यद्यपि यों के कल्प-बदन से निकर धारा प्रियत एवं अस्तुती तक के समय में तथा प्रभाव प्रकृत करने में कवि भोक दृष्टि से बेतरह—बंभा हुआ है, यही कारण है कि उसके अनुभूत उपादान पनीहा-दिना बाबल यों 'धानों का पीत' बसंत पीत 'रत्न' पाठ गए पावए 'अनुत का पीत' 'दुपहरिया' तथा एही जैसे और लोक बीजन की-प्रविमान्य बंध रहे हैं । कल्प समय में कवि की युवक कोमल-दृष्टि विरन्तर उसके साथ रही है । सीधमें की उमानियत के प्रति कवि की दृष्टि-विशेष है । कोमलतम व अंतरंग अर्थों में भी कवि कठिनव स्थानों पर बौद्धिक हो उठता है, स्वर्गों पर कवि में तटस्थ दृष्टि का फूटल-स्पष्ट रेखा का सकता है । व्यक्तित्व का विचारण तथा युव विद्वन्मनाओं के मध्य से युवकता हुआ कवि का बोध तटस्थ रूप तथा बौद्धिक प्रवृत्ति को पाठक के सम्मुख उपस्थित करता है । ऐसे लक्षण कवि के पीत बोध को किसी तरह युव बोध के समानान्तर पहुँचाने में सफल होते हैं । 'विधा पीत' में कवि प्रिय अर्थस में सवीरत भावने के लिए युवकोचित सरबता धीर उदात्तपन का प्रामय लेता है, किन्तु 'फूज सा लक्षण भावने के लिए उसकी असुकता तथा "फैल छा इस तीर पर हमको सहार बिखरा गई है ।" जैसी बौद्धिक सुपर्वीत अनुभूति से भी यह प्रचुडा नहीं है । कवि के पीतों में टटकी सीसिकता है ।

केदार के पीत-बोध सरसरे तीर पर देखने से नये प्रतीत नहीं होते ; किन्तु कवि द्वारा उनके प्रति बरसा गया ग्याय नयेपन को उजागर करने में सर्वथा समर्थ है । 'रत्न' में 'पहल ठमका किया' 'धिरुकी का परवा बडका किया' तथा 'बसंत पीत' में—

यह कंसा पातात

कि मन की नयन नयन कर दिया"

के साथ 'हालों में धिरजन की देखनी' 'दूटन में रचने की नदी-नदी सी प्यार' अपसु'रत अंतरों की उपलब्धियों में से ही है । व्यतीत पीतों के परिचित कल्प को केदार ने सर्वथा नयेपन के साथ निम्न स्वी में प्रस्तुत किया है । बाबल यों में कवि नदी बेतना के

ईमित होता है। 'रचने की नयी व्यास' ही शब्दों के उलट फेर के साथ इस गीत में व्यक्त हुई है, साथ ही 'शान्तों के बच्चों' नयी शैली के प्रतीक हैं—

‘हम नये नये शान्तों के बच्चों तुम्हें पूकार रहे हैं’

जब कि हरी भुआएँ नील विद्याओं को छु घाएँदी 'शान्तों के बच्चों' का बचउभय नये मुक्तों को हृदयमय की बात स्वर्ब में मिए हुए है। ऐसे समयों पर केदार नयी कविता के समावाहार ही पीठ-अनुभूति थीता है।

अन्तर्गतों की शौर्यकर शायरम रूप से पीठों में अपने मुख व मुख को महत्त्व दिया जाता रहा है अथवाक। विश्व विद्यालयों में अनुभवही अन्वेषक इसी कारण निवेदन को पीठों का आध्यात्मिक तत्व बताते रहे हैं इस अव्यक्तता के समवेक में (ज्यों कि कभी-कभी विद्याओं का उपस्थित कर देते हैं) अन्वेषि प्रयोगवादी पीठों तक से अर्कने अन्वेषि किये हुए हैं। केदार के मुख पीठों में ईमानदारी के साथ अन्वेषिक विन्दन अपसक्ति भी है जो उसे निश्चि पीठ अनुभूत से काट कर अन्वेष कर देती है विल्व तो उसका नया है ही, कवन-अच्छाती भी नयी है। 'दृष्टने दो गीत रचना ऐसे ही विल्व और विचार से सम्पूत है—

‘अन्वेषि है वेरे त्यों पर तुम्हारी लहरे
 अन्वेषि है वेरी शान्तों में तुम्हारे आन
 अन्वेषि है वेरी मुखों में तुम्हारी शरियाँ
 अन्वेषि है वेरी शान्तों में तुम्हारे आन
 तो छोरे जाई
 छोरे जाई
 नुये नय नये छोड़े की तरङ्ग
 हृदये हो”

नये पीठों में अन्वेषि-अन्वेषिता के कोण से केदार के पीठ किसी भी नये शौर्यकर के शौर्यों से अधिक विस्तार पा गए हैं—अन्वेषि के पीठ दुबह तथा एक विशिष्ट रूप तक ही सीमित है। इसका कारण है— केदार के पीठों में अपने अन्वेषि शरीरों परिकेय अन्वेषि की सहज अन्वेषि है। केदार 'अन्वेषि मुक्तों' की बात करवा है 'दृष्टने दो गीत रचना' की बात करवा है पर, शौर्य, अन्वेषि तथा इसी अन्वेषि

घोर यथार्थ सामान्य वस्तु चरमों की बात करता है ये वस्तु-चरम केदार के बीतों में बखानवत तथा प्रतीक-परक रूपों में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु ये प्रतीक इतने स्पष्ट प्री-बर्तन इतना सहज है कि पाठक को ऊहापोह की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह समीप यथार्थ पकड़ केदार के बीतों को वहाँ सघटा, क्रोमसता, धारणहीनता प्रकट करती है वहाँ उन्हें लोक मानस के धार्मिक निकट भी सा देखी है, निरवयव ही इसमें कवि की लोक नीत दृष्टि की आरकशा के बड़े सहायता भी है।

बिम्बों द्वारा धम्म अनुभूत प्रेषण में केदार पतिरिक्त रूप से जायक है। बिम्ब उपलब्धि केदार की कविताओं में जिस बाहुल्य के साथ है, उसी प्राचुर्य के साथ वह उसके बीतों में भी—है “मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि बिम्ब रचन धर्मित बिम्बों द्वारा अप्रयुक्त राग-बोध के पैटर्न निर्माण की बेसी समता केदारनाबसिह है, बेसी धार किसी कवि में नहीं है; नामवर में उपयुक्त टिप्पणी केदार की बिम्ब समता प फरवरी सन् १० में की थी, इस टिप्पणी को लिए हुए समय-वार वर्ष होने को धार वह समय नामवर की वह टिप्पणी-प्रवचन ही तापी रही होगी, जैसे समय ही उस समय बिम्ब उपलब्धि के संदर्भ में सम्प्रतिष्ठित थे। फिर भी यह स्वीकार कर लेते हैं कोई हर्ष नहीं कि बिम्ब निर्माण में केदार पर्याप्त सबब है। बिम्ब विद्या के अनुसा प्रत्येक बिम्ब बिम्ब नहीं होता, हा प्रत्येक बिम्ब में—विचात्मकता (वाहे परिचित है नवों न हो) बनी ही रहती है, और।

केदार बीहित घोर इन्द्रिय स्थिति बिम्ब प्रस्तुत करने में सिद्धांत है। धार तक की विकसित काव्य चेतना में बिम्ब को काव्य-माध्यम रूप में धार तक की श्रेष्ठ माध्यम सीमा मान लिया गया है। केदार ने ‘दीर्घ सप्तक’ के अपने वचन्य में इस चय को प्रतीकार भी किया है।

बिम्ब केदार के पीठ-कव्य को तथा धरुपाकल्पनाओं एवं राग को मूर्तत्व तो देते हैं। उसकी रचना प्रक्रिया के पद भी उपायेकलते हैं। केदार की बिम्ब निर्माण—प्रक्रिया के कई स्तर हैं। कभी तो कवि प्रारम्भ में विषय का ब्रह्म माय ही दे पाता है कि बिम्ब प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, जब बिम्बों का लभ पमता है तो यही बिम्ब अनुभूत धारण बन जाते हैं घोर साध कव्य ब्रह्म जाता है। कभी अनुभूति-प्रवाह में बिम्ब पानी के

हुआ है। इन कविताओं की भाषा और ढंठी बचन से प्रभुवी नहीं है। कुछ कविताओं को छोड़कर शेष में इस संग्रह के शीत बचन के सधु संस्करण मात्र हैं। 'क्या हुआ कुछ एक मया को कुछ बिह्व तो सेप है', 'मरने से पहले हैबी मेरे निज साज निज बसती,' आदि शीत इसी ढंठी के हैं। जिनका कथ्य अधिकतर 'एकान्त संवीत' और 'मिया निर्मल' का है।

'प्रतिष्ठा' की कुछ कविताओं में महादेवी की छाया भी स्पष्ट रूप से प्रकृत है तथा इनमें कहीं कहीं रहस्यवादी भावधर्मिणी की समलौघ छटा दिखाई देती है। 'मय तो है जो प्राण परम में', 'कुछ ही कठिन बुद्धि का बचन' है आदि में वह बहुलता व मन्त्रीरता नहीं है जो महादेवी में है। 'बिज प्रसीमित मिलन-गूह में बन स्वर्ण प्रसिद्ध,' खोबती उनको कि जिनको खोबती सब प्यास' 'रूप बहु मेरा नहीं है, आह जो इस नैन की है आदि में महादेवी का प्रभुत्व ही है जो कई माया सेकर खोज रहा है। मेरे तरे सम्बन्ध पर हिन्दी में कई शीतों की रचना की गई है। निम्न पंक्तियों को देखने पर छायावादी कवियों और भीरव का प्रभुत्व स्पष्ट हो सकेगा—'तुम से मेरा सम्बन्ध नहीं तुम प्यार और में वीड़ा है तुम चुम्बन के माधनाभाव में सहज पोखरी खड़ा है'। 'प्रतिष्ठा' के कुछ शीत प्रपतिवादी श्रेणियों के भी हैं जिसमें वीक्षित घोषित मानव की रक्षा चिन्तित की गई है। वह भी इस रूप का मानव है, नयी—'धुंधी माँ के बिलको जन्म दिया नन्ही बच्चों पर जिसने पैर मरा पक्ष के पले बाट बाट कर' आदि इसी प्रकार के शीत हैं। 'प्रतिष्ठा' की कुछ कविताएँ भीरव के फलवशावादी स्वस्व को भी समार कर रखती हैं। इसी संभवत से भीरव पर जूँ कवियों का प्रभाव भी हल्कीपोखर होता है। माने जबकि तो भीरव जूँ के प्रभाव में इतने बहुरूप मए कि उनकी बहुल ही कविताएँ हर दृष्टि से जूँ की ही प्रतीत होती हैं। 'तुम कंधन पर बड़ा है बापका कब है बरछी कपल है मासमान' 'रो रखा है मरक घा रही है दाँस को हँसी, राह बब रही है यदें कारवा विप हुए' आदि शीत जूँ के ही प्रभुते हैं।

'बदल बरस मयो में भीरव बचन के प्रभाव से अपने मापको मुक्त करने में प्रयत्नशील हैं और एक हर तक से इसमें लक्ष्य भी हुए हैं। 'सर्व' और 'प्रतिष्ठा' के छोटे छोटे शीतों के भाव और शिल्प पर बचन का जो स्पष्ट प्रभाव दिखाई दे रहा है वह 'बदल बरस मया' के शीतों के शिल्प पर नहीं के समान है। लेकिन निष्ठा, बेचना प्यास अणुअणुता की पुनपुनारुह नहीं है। रूप में कोई नवीनता दृष्टिगोचर नहीं

होती है, जब यहाँ तक घाटे घाटे नीरज की धापा में निहार और आज-भू-वार की विनात्मकता इसकी छटा पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। उक्ति और अभिव्यक्ति में बचीबचा तथा उल्लस कृष्ण बोधना नीरज की धरणी विशेषता है। 'अस्ति' और 'नास्ति' की दोनों भावनाओं को सुनिश्चित कर धर्म में नास्ति की प्रबलता दिखाना कर चमत्कार पुस्तं डंय है अपने आपको अभिव्यक्त करना नीरज का किसी कीपस है। निरञ्जनी न सुप्ति है न व्यास है, क्योंकि पिया दूर है न पास है' इसका उत्तर उदाहरण है। 'कत दिए को उचैठ निरञ्ज जायेया, क्या पता इस बिदा है बयन के तले ये हमारे सिद्ध धारिणी उठ है।' 'केच ही तुम न बेटी पु जाती रहो, बेचते बेचते नीर हब बानेया' धारिणी उठ एक ही भाव का बार बार पुनरावृत्त करते हुए चलते हैं।

नीरज के कुछ पीठों में निरतिबाह की कृष्ण प्रबलता भी दृष्ट्य है। 'जीता हूँ इसलिए कि बीना भी है एक विश्वता। कुछ पीठों में अंशत बेसी मांसलता भी होती है—'कम का करो न बयान' तुम्हें मेरी कसम है' धारिणी उठ इसी धरसर के है। एकाच स्वस कर तो यह मांसलता धरि की सीमा को पार कर जाती है— मात्र कुम्बक की सपी बरसात धरों की यकी में। 'बदल दरस गयो' के कुछ गीत मात्रा, अंशत और जस्ताह का स्वर सैकर भी उपस्थित है। एकाच स्वस कर धाधा भी घुडी घुटी है पर कहीं कहीं अक्षर स्वस्व और मार्मिक स्वरूप भी व्यक्त हुआ है। 'पम्ब की कटिनाइयों पल्लवु में हार यह सम्मक नहीं है' 'धीप स्वस धव बन पया उलस बसते बसते मंजित ही बन ममी मुसाकिर चलते चलते' 'और इतीसे पर में धुब को पुन तुमको पुन सेता हूँ' में जो मक्ति की लम्पता है वह उदय में भारतीय चेतना का मूस स्वर है। यह प्रबुद्ध चेतना नीरज में प्रत्यक्ष है पर यहाँ है वहाँ निश्चित रूप से वह मूठ रूप में कवि अभिव्यक्त करने में समर्थ हो सका है। नीरज के कुछ गीत प्रेम का या कहिए वाहना का मांसम रूप प्रापथिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। यहाँ तक कि प्रकृति के उपकरणों में भी संशोधन ही संशोधन देखते हैं। 'बांरनी तुक के तले धरिसार तब से कर रही है, घोष वालों पर कसी के चुम्बनों सी मर रही है 'अभी न जायो प्रास' धारिणी उठ अद्याप न्यु वार और वाहना को बयाने वाले विष प्रस्तुत करते हैं। नीरज ने स्वस वाहना के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए हैं— जब तक ये वाहना समस्य कोष में ब्याप्त रहती है तब तक वह आकर्षण कहुनाती है। इस तरह न मनुष्य मांसलता से आक्रान्त रहता है और उसके भीतर का पशु प्रबल होता है। यह

माना तो बाह्यता है किन्तु देना कृष्ण नहीं चाहता—यही पार्थविक वृत्ति है और इनी का नाम स्वार्थ है। इसी स्तर पर जो रचना की जाती है वह मोर यौन लृप्तता से विकृत होती है। मीने जीवन में इस प्रकार का केवल एक गीत लिखा है— धात्र तो मुझ से न समझो तुम्हें मेरी कृष्ण है।' यद्यपि नीरज अपने वक्तव्य में केवल एक गीत को ही स्वीकृति देते हैं पर सत्य यह है कि ऐसे गीत एक ही नहीं बनेक हैं।

'दर्द दिया है' और 'प्राणपीत' एक धात्रे धात्रे नीरज का कवि अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाने में किसी तरह तक लक्ष्य हुआ है। 'दर्द दिया है' के कुछ प्रपञ्चकारी गीत जिनमें धात्रेण तथा कर्णुता का भाव प्रबल है काव्य का कम परन्तु मृत्यु की छाया सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है वहाँ कवि यह प्रारम्भ करता है कि मैं ज्ञाना का स्वीति काव्य, चिन्तनारी बिसफी भाषा" वहीं जती लागू बनात्वा, धरिदरास धीर लक्षणमुरता इस चिन्तनारी को मसल देती है "किसी निरुत की एक फूफ का हूँ बस लेल लमासा" वहाँ नीरज धात्रे धात्रे को उपर्युक्त भावनाओं से मुक्त रखकर कुछ लिख सके हैं वहाँ उनका गीत प्रबल निरुत पा सका है। "मेरा गीत दिया बन भाये" इस का ध्येय उदाहरण है। कर्म की दृष्टता के स्वर इन गीत की उपजि है। "धने न जब धरिदारा करे तब बसकर मेरी बिता उजाता" "पहले मेरा कछन पठाका बन पड़ेरे जब कान्ति पुकारे भावि में उजातता है वह गीत को प्राणबान बनाने में लक्ष्य है। इसी गीत में मानवी करण के द्वारा जिन दिव्य का विधान किया गया है वह पचाच धीर घुमासावा से मंडित है— 'भूषी सोये रात न बोई, प्याही जागे मुबह न कोई स्वर बरसे बावन या बाये रक्त निरे येई उन धात्रे इसी प्रकार मस्तक पर धाकात उदाए, बरती बरि पांको से, तुम निकमो जिन पांको से मूरत निकसे उन पांको से" भावि इस प्रकार के गीतों में नीरज ने असामान्य दुर्घना धीर विषमता के मून्वरतम विष प्रस्तुत किए हैं।

'दर्द दिया है' और "प्राणपीत" में नीरज ने धूमिकाओं के माध्यम से अपनी कविता की दार्शनिक पौठिना प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। दोनों ही धूमिकाएँ प्रायः एक ही हैं। धात्रे धात्रे को उन्हीने लौदर्द, प्रेम और मृत्यु इन तीन मूष्टि रूपों का बलाकार बोधित किया है। धीर इन तीनों को नीरज ने एकसा विधि (विधि) गति धीर गति भी माना है। इसीलिए नीरज का यह दावा है कि जीवन के सत्ताईध कृष्ण मूर्ते के बाद मेरी धनुभूति सब तक तीन सत्य प्राप्त कर सकी है—मोदय, प्रेम और मृत्यु' धीर बोधा सत्य है शोटी का विशे नीरज ने प्रेम के धर्मेनठ ही माना है लेकिन

रोटी के माध्यम से मानव एकता तक पहुँचने के लिए नीरज का कोई भी नीत बचावकरण के लिए नहीं रचा जा सकता ।

‘माधुवी’ की कई रचनाएँ उपरोक्तपरक और कथन मात्र हैं “प्रेम को न बाल हो” “घाबरी हो तुम उठो कि आबनी का प्यार हो” आदि में प्रिय बड़ा है, पर जीवन की परिभाषा मोत से झु ठित है—“अधुवी की पार्श्वों पर नीत का कुमार है” इन पारी कविताओं में पुनरावृत्ति शेष अधिक विद्यता है । मृत्यु के सम्बन्ध में नीरज का श्रेष्ठ गीत “कारनां पुनर मया” है । इसमें विषय विषय कर्मों द्वारा अलमंभुरता का बान किया गया है । मृत्यु यदि जीवन की अनिम्बन्धक बन कर प्रहीत हो उभी उसे अन्तम कहा जा सकता है । मन्त कवियों की “सुभी की देख” में मनास्वा, निरपछा प्रचना अलमंभुरता के स्वान पर आह्लाद और मानव का स्वस्थ विमान ही प्रतीत होता है । नीरज ने भक्तिकालीन संघ पर नये परिबेध में जो नीत बिजे हैं उसमें विशेष मानिकता है—दर्द है—टीस है ।

नीरज ने अपने गीतों के द्वारा उत्तरी जाकुफता का वर्णन मात्रा में प्रचार किया है, पर साथ ही जगहनि अपने पीतों में प्रचीन दर्द दिया है । सहमे की पवित्रता और दर्द की पावनता एक धारम-उपलब्धि के रूप में बड़ी हो उठती है पर यदि यह पुनः एक ही धीमिद हो जाती है तो धारम अपना पूर्ण दायित्व नहीं बिना पाती है “सुद बए उन के रतम सब सुद मए मन के सपन सब तुम मिलो तो अिम्बकी फिर पाँच में काजब अगाए, आदि पीतों में प्रचीन दर्द है । संसार की परिचरता का बोध देकर जो द्विविधा नीरज ने जगस्वित की है वह भी प्रगुठी है । “एक बाँध बल रहा प्रलभ प्रलय” इसी बारा का पीत है । बर यदि पाया से रदित हो जाये और सर्वैक अपना पात ही कछा रहे तो वह एक ऐसी निरपछा से अभिमूठ हो जाता है जो जीवन की पति को झु ठित कर देता है । दर्द को अपनाया देने वाली हिन्दी की तकसु बीड़ी के नीतकारों में नीरज के साथ-साथ रामानुजर (याकी बीरैरु मिष, बोपी ज्ञान पारिस्त और राजरचान के तस्य कवि ह्रीध आदानी भी हैं जिनके नीतों में प्रचीन दर्द है जिनमें कवि अटपटाता है डिरवा है उतरवा है धारम अहवा है, “पीड़ा मोडे कुप हकारे साथ में और पुकों के हाप ह्यारे हाप में प्रचना “ हमारा कुप में कर छोड़ की क्या बात जाने हम ” जो पुषको इनको बूटन की पाटियाँ जैसे तपी आदि नीतों का मायक कुवियों और रगुतियों के सहारे भी जीवन में सम्बन्ध और विरहात को संशोचर जाने

बदले के लिए केवल "पीर कुछ बरबी ऐसी छापी उठ, मोर कुछ पीर बुहानी होकर निकली" है लेकिन निरपत्त नहीं, क्यों कि वह जानता है कि "उम्र डगती जा रही है धर की, एक दिन इस का जनाया जायगा" ।

मीरज के पीतों की एक नई उम्मीद विदेय जन्मेजनीय है मीर जे पीत हिन्दी साहित्य की एक उपमणि है । हिन्दी के प्रबिकाराय भासोषक हिन्दी के नवीन पीतों की मोर इच्छिपात किए बिना ही उन्हें घटिया दिग्ग का घोषित कर करने कर्तव्य की इति की मान लेते हैं । अथ प्रभाकर माचने की इस उकरीर का मुपाइना कीजिए । 'एक तरकी पदर धामर दोस्त से बहुत खोबने पर पठा जाता कि जो मज्जमगी है जो इच्छिया गज्जे तरन्नुम से पकटे है मीर महाजरे जयकाठे है, मे हिन्दी के पीतकारों की तरह से, इस मुकव्यका मोर विचार-पत्र से खरातीन है—उनका प्रमान उद्देश्य थोतापों को डेटर करता है ।' माचने की मे बात कही छूँ के संबंध में मीर सेवे हाथ जाबुक फटकार दिया हिन्दो पीतकारों पर । मैं इस प्रकृति को दुम नहीं मानता हूँ । मीरज के कुछ पीत उनकी भासे खोबने के लिए पर्याप्त हैं पर छोटे को जपाना सरल है, जापते को जगाया असंभव है । मीरज के बिना पीतों को मैं मानता हूँ वे इसके बस्तिकासीन पीत की परम्परा के पीत हैं । इन पीतों का कम, लक्ष्य भाव बर्चन नए परिवेध में प्रस्तुत करने । मीरज को प्रभूतपूर्व सफलता मिली है ।

बाबल खोरी कर तुमै कम तो कर दिया बोधे धालिन का
पर मेरे कमज्याम बदा धर रोती भापर का क्या होया ।

जगत पीत में रिक्तता मोर खोखलेपन का जो दिव्य बिधान एक ही रूपक है अथ प्रस्तुत किया गया है वह मार्मिक है, सरल तरल है मोर पाठक के मोता के मन पर प्रभुम्य प्रभाव डालने में समर्थ है । जगत का जिस प्रकार से जगत हृत् पाराध्य के प्रति होता है उसे मीरज ने इस प्रकार कहा है—'मम पू पाइे भाँख दिखाए, मम पू पाइे कसम बिभाए, जब तक साम न पू माएगा मैं भी पीत नहीं पाऊँगा संत कवियों की बरम्परा में मुसामुबोब देने वाले पीतों की कड़ी में मीरज ने अपनी प्रभुमृति से विघट बिन्न जपस्वित किए हैं । 'ना मत् हो माराज' 'ना बज मरन न बाळी' 'मै मत् ऐसे डेर' 'ना धर मोर सुनाले' धारि हिन्दी की पीत बरम्परा में माइल स्टोन हैं । जगत पीतों में एक ही रूपक पूर्ण बिम्ब प्रस्तुत करता है । यहाँ सरल बिन्न नहीं है । काँच के छोटे २ टुकड़ों का घोषव नहीं है । बरन एक बिघट बिन्न है । पीत की परम्परा में इन

कविता की पूरव में छोट संकोच नहीं होना चाहिये । इसी कारण "परल तुम्हारा बन गया बरल तुम्हारा स्मार्त बन गया" और "निष्कार ! जब तुम्हें बिना स्वयं साकार हो गया । आदि के स्वर रहस्यवादी से लगते हैं पर इनमें रहस्यार न होकर पारदर्शिता है आ अर्य से सुगर से चिप से मडिल है । इन चीतों में नीर केबाई थीक पड़ती है । हिन्दी के एक आलोचक ने बिना है- कुछ कवि है जो सीर्य बोम के लिए (विशेष करके छोटे छोटे कोच के टुकड़ों में घुड़ी कोच के लिए) चुकगत है उनके सन में भी ताज की स का पठार बहाव है । यह सप कई छोटे चिप एक लड़ी में विरो से समर्थ शूठी है पर एक चिप बनाने की बात नहीं धाठी है यह मझझा जाती । नीरक के इत चीतों में एक ही चिप है और जब ताज के साथ समुह की सहरी विपठ विस्तार है । नीरक का चहुंपन भी इन चीतों में मानप्रत्य से बेठा है । तर्पु की नाजूक कामाभी का उपनोच पर्यत संक्षिप्त बिन्दों में किया जा सकता है पर । चिप को उपस्थित करने के लिए तो यह पंगु ही साबित होती है । यह प्रसन्नता । नीरक इस तर्प को पड़ल कर सके है । इसी प्रकार के स्वर " मेरा जीवन बिहार है " तथा " साए बाग नजर घाटा है " आदि चीतों में सर्वोपे मए है । मेरा बिद कि इन्ही चीतों के कारण नीरक का हिन्दी में अपना महत्व सर्वेव रहेगा ।

नीरक ने अपनी स्वारी उपमाओं कपकों और प्रतीकों का प्रयोग किया है । कारण उनके चीतों में नवीनता के साथ साथ प्राकृत्य भी पुन गया है, नीरक के ये और प्रयोग भारतीय हैं बरती को सीधी संव से मुकाबिल है । नई कविता में उबायी । कोलकर बिच काम चलाऊ वृत्ति का चलन है वह नीरक में नहीं है ।

लोकचीतों से छार ब्रह्म कर जिन चीतों की रचना नीरक ने की है वे भी वि हैं । हमने तुने मुम्हो मेरे सुटा है इस भरे बाजार में चुनरी तक का रंप जड़ मया सा रयोहार में ।" तथा "बड़ी सत्री बाघत मा र्ही सबिमा संपलचार, प्रीति पासकी छार पर बैठे हुए कहार बुकृतिवा जाने को साचार" हैं किन्तु लोकचीतों की मकम को चीत लिखे गए हैं वे सुपे संभड़े हैं । इनमें 'कसल जाने का चीत' शोकक पर पाया जाता चीत 'साधो जीवन दुःख की घाटी' 'साधो हम बीसर की पोटी आदि है ।

नीरक के संबंध में सब एक ही प्रसन्न सेव रह जाता है वह है चतके चविष्य के में ? इन बिनों नीरक किन्ही बुरका सोठ रहें हैं । यह बुरका यदि वह पठार से हिन्दी को लगते बड़ी बड़ी धाता है पर यदि यह बुरका जगती ल्पचा से बिल चुन तो नीरक की धारणा पर भी प्रभाव डाले बिना न रहेगा । इन चिंतकों के संपक को कुछ दिन पूर्व नीरक के निकट एक पुरे दिन रहने का संयोग प्राप्त हुआ है, कि सके ऐसा मया है कि नीरक को यही की हककड़ी बेड़ी सुधावती प्रतीत होने जब मल 'हिन्दी के परवशीव' हिन्दी की बीसा की इन रीठ पति बर चविष्य ३ संक्षिप्त ही है ।

मूल्यांकन



७

ये पाठक

७

ममम ह्यैवा
राजामण्ड
हरीश भादानी
प्रकाश परिमळ
सीहा भटनागर
रश्मि
सरळ
सुर्गा माहेशवरी

ये पुस्तकें

७

- भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
- १ बाणी
 - २ सोपण
 - ३ कागज के फूल
 - ४ मान के पार द्वार
 - ५ रत्नावली
- राजपाल एण्ड सन्स, बिल्सी
- १ घञ्जेय
 - २ हरी बाँसुरी गुलहरी टेर
 - ३ प्राथमिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम
 - ४ नीत भी धनीत भी
 - ५ हिन्दी के सबसेष्ठ प्रेमगीत
- हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
- १ विराम बिम्ह
 - २ त्रिजीविपा
- वागेश्वरी प्रकाशन, बयपु
- १ सुषि सपनों के तीर
 - २ अरुण प्रकाशन, मागस
 - ३ पर गुँब रह जाती है

★ हरी वांगुरी चुनहरी टैर : श्री सुमित्रा
 नगरम पठ । जब कवि अपने कुछ कुछ की
 भाषावेद्यमय अभिव्यक्ति पर ध्यान रखेगा,
 तो ससकी वागवाच प्रवीण (Lyric) के
 रूप में ही प्रकट होगी । प्रवीण काव्य मूलतः
 जीवन की प्रासंगिक अनुभूति की राधा
 एक अभिव्यक्ति है जीवन के सम्पूर्ण क्षणों
 की वाणी नहीं । हमारा तात्पर्य प्रवीण
 से ऐसी कविता का है जो भाव-प्रधान हो
 जिसमें कथा के त्वाच पर भावों का परस्पर
 हो । एक छोटी सी कविता में कवि अपने
 भावों की परिचित से एकात्मक प्रभाव का
 सूत्रपाठ करता है । कवि के हृदय में
 प्राकृतिक भावना के साथ प्राकृतिक वृत्ति
 का सामंजस्य होता है, अन्त और संवीत
 के समन्वय से भावों को रूप दिया जाता
 है, जो कवी वैयक्तिक और कवी सामूहिक
 चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं और
 इसमें एक विचार, स्थिति या भावना का
 विशिष्ट प्रभाव होता है । भाव हीवर्त
 सत्य और अर्थगत पर आधारित रहता
 है ।

पंथवी के प्रथम युग के पीठों में
 प्रेम की प्रधानता है, मध्यकालीन पीठ
 सामाजिकता की ओर लम्बु है और
 अन्तकालीन प्रगीतों में अध्यात्मतत्व की
 प्रधानता के कारण बोधिलता भा बनी है ।

पंथवी अपने पूरे काव्य जीवन

में मूलतः आधावारी कवि ही रहे हैं ।
 यद्यपि इन्होंने आधावारी अभिव्यक्ति से
 हटने का प्रयत्न धरकर किया है परन्तु
 मूल भावना इनके मातृ से जुड़ी रहती
 है । यही कारण है कि 'धीला' से लेकर
 'बाणी' तक के सभी काव्यों में पंथवी के
 सुन्दर प्रवीण दिने हैं । 'हरी वांगुरी
 चुनहरी टैर' में कवि के मू बार प्रधान
 पीठ संकल्पित है । यद्यपि इस प्रकार के
 पीठ पंथवी ने अधिक नहीं लिखे । संकल्पित
 पीठ अपने समय के सभी प्रतिदि प्राप्त
 गीत हैं । इन सभी पीठों में मू बार के
 कथाय चित्र न होकर उनमें भावना का
 लक्ष्य लक्ष्यन है । इन पीठों में हृदय
 की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, प्रेम के विरह
 रूप को प्रकट करती है । 'भाव दिने क्यों
 प्राप्त प्राप्तों से' पीठ इन पीठों की सफलता
 का सुन्दर उदाहरण है । 'क्यों से बिसोकती
 तुमको क्या भा जातायन से ?'—कथा का
 भावनायन से झूकना कवि की प्रेम मूर्ति
 विशासिनी कल्पना का परिचय देता है ।
 मू बार के दोनों पद-विशेष व संयोग-
 प्राप्त हैं । पंथवी वाचना की परिष्कृति
 चाहते हैं परिष्कृति संस्कार चाहते हैं,
 धारण प्रेम के हामी हैं, प्रेम को विरहभासी
 रूप देना चाहते हैं — मानव-हृदयों के
 मित्त में प्रेम की विशिष्टता प्रथम मायते
 है । यही कारण है कि इन मू बार पीठों

में जाड़े वह पक्षपातीन प्रपीत हो वा
 प्रामाणिकीन भवना उत्तरपातीन वन
 प्रती में प्रेयसी के लिए अधिभ्यक्त नाम
 परिष्कृत होकर धार्ये हैं । पवित्र प्रेम का
 एक उदाहरण से—

‘पञ्चम्या साधन प्रेम प्रीमा यस्मिन्ना की
 जीवन प्रतिनिधि जन भरती की
 स्वयं बना देवी वह निरिच्छा ।’

वैसे संग्रह के सभी पीठ हर्ष, विचार
 इत्यादि से भरे हुए हैं । पर इसमें कुछ भेद
 भी है किन्तु इस संग्रह में नहीं रखा
 जाना चाहिए था । पंज-काम्य का
 विचारों इन पीठों से उनके काम्य प्रयुक्त
 के समय प्रकटी तरह परिचय पा लेता है ।
 है । प्रस्तुत संग्रह का प्रलय से क्या महत्व
 है, यह समझ जाने वाली बात नहीं लगती ।
 सिवाय इसके कि पंतमी के नाम से यह
 पुस्तक बिक नाम और साजिक नाम हो ।

× × ×

★ शीबल की सुमितात्मन पंत ।
 प्रस्तुत संग्रह में संघीत रूपक है जो
 रेडियो के लिए सिद्धे घरे रूपक किन्तु
 काम्य रूपक के निष्क की रचनाओं की
 खेती के हैं । हिन्दी में प्रथम काम्य-रूपक
 कापी सिद्धे का रहे हैं पर इनकी ऊँचाई
 और रूपक ‘शीबल’ के रूपकों से कम
 है । प्रस्तुत रूपकों को प्रतिपाद्य रूप पर

पंतमी ने सम्भी कविताओं को सिद्धी होती
 तो प्रकृता रहता क्योंकि इस रूपक (Form)
 की प्रतिभार्यता ‘शीबल’ के रूपक अनुभूत
 नहीं कर पाते । रूपकों की भाषा तो प्रथम
 किन्तु परिभाषित है किन्तु वह ‘मावेद्यपूर्ण’,
 ‘तथक’ और प्रासङ्गिक नहीं है । सम्भ
 कविता के अधिक निष्क है । पाठों के
 मुख से जो बात कही जा रही है उससे
 ऐसा प्रतीत नहीं होता कि पात्र स्वयं अपने
 बोल रहे हैं ऐसा लगता है पंतमी स्वयं
 अपनी बात कह रहे हैं, और न ही इनमें
 गणकीय गति का विकासमान अनुभव
 होता है ।

शीबल (स्वप्न और सत्य) तथा
 ‘द्विभिन्नय’—इस सभी संघीत काम्य
 रूपकों की विशेषता इनकी गम्भीर दास्य
 निष्क-वस्तु है । सेखक के सम्भों में ‘शीबल’
 ‘सकलकालीन मानव-मुक्तों के विकास
 का प्रतीक रूपक’—स्वप्न और सत्य—
 ‘घार्य और वास्तविकता के बीच मुख
 संघर्ष चोटक काम्य रूपक’—‘द्विभिन्नय’—
 जीवन सत्य की अधिकतर विषय का काम्य
 रूपक—है ।

रूपकों की वस्तु, उनके विचार
 प्रत्यक्ष गम्भीर हैं यह सेखक के प्रथम वस्तु
 निबंध से पर्याप्त सिद्ध भी है । किन्तु
 सेखक द्वारा प्रस्तुत विविधों और उनके

समाधान तथा उत्तर पार्श्वों के अस्तित्वों से सम्बन्धित नहीं होते पर ऐसा लगता है जैसे कवि ने पार्श्वों के लिए भाषण तैयार कर रिये हों। कर्मों में विद्युत् समन्वय की यत्न कल्पना की गयी है, उसमें न गनी-गता है न उसकी कोई व्यावहारिक सम्भा बना है।

‘काम्य क्यक बोला के मन में विद्वान्त उत्पन्न करने बाबा साहित्यिक माध्यम प्रमाणित हो सकता है।

‘सीबर्लु’ में वसाम्य श्रेष्ठ है, पर क्या कवि इस श्रेष्ठ की प्राप्ति में सफल हो पाया है ? ‘सीबर्लु’ के वे क्यक प्रयत्न करते हैं।

× × ×

★ बाली भी सुमिशानम्न पत्त। ‘मतिमा’ के बाह की कृति ‘बाली’ है। यह कृति ‘मतिमा’ की मृ पत्ता ही है पर विद्युत् प्रकार ‘वर्लुबुक्ति’ का स्वर सामाजिक अधिक हो गया या उठी प्रकार यह कृति भी कवि की सामाजिक ‘बाली’ है। बाह्य विषयताओं धीर समाज के स्वर अधिक सुन्दर है पर कवि की घाटा भास्वागत है धीर इती घालोक में बहु विकासक्रम के माध्यम से समन्वय धीर मुख को यह बाद रहा है। ‘सुन्दर कल्प’ ‘ऊच नीच’ के धिदभाव को मिटाकर कम बचन धीर

मन की एकता की भावस्यकता प्रेमपूर्वता के आधार पर बतलाता हुआ मानवतावादी कवि सामाजिक भावों की अन्वयण करना चाहता है। कवि यहाँ पर भी मानव को भीतर से बदलने की प्रयत्न चाहता है।

कवि का वर्तन इस कृति में पूर्ण कृतिवों की नाईं परविन्द वर्तन का मेनि फेस्टो बनकर नहीं पाया है परन्तु वह काम्य से युक्तित नया है। पंथवी बुद्धि के विरोधी है अक्षरप पर उसका निवेद नहीं करते। ‘बाली’ में कवि ने अपने घान्तरिक पदों को जोल दिया है धीर इती कारण कवि प्रत्यक्ष सुख चिन्तन का उपास्वापन कर पाया है। वह अथत से दूर किसी अन्वयम चिन्तन को मृष्ट-रित न करके उसे मानवीय बनाने की साधना में लवा हुआ है। पंथवी वर्तन को मानवीय व्यवहार धीर उसकी व्यवस्था में रमा देना चाहते हैं।

कवि ने विषय पुरों की सीमाओं के उकोच को पुनः सतकारा है। धीर गनीन चेतना के बराबर पर सामन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है।

‘विद्वान्त कर्म’ धीर्यक रचना अथ रोको निर्मल मत रोको जड़ फिर चेतन बनने की गहन विपासा ‘व्यान्तर’ धीर्यक

सब रत्ना के चरित्र में समाविष्ट हैं। युवायु
 कृम मनीषैज्ञानिक सम्मान और सामाजिक
 इन्फ्लोए के 'ओकस' में रत्ना का चरित्र
 कवि की मेखनी से वहाँ एक घोर मार
 तीव्र पुरातन इतिहास की महान गारियों
 की सुविधा में स्नात हो उठता है, वहाँ
 बूखी घोर सहन, मौकिक, साधारणीकरण
 कुल, यथार्थ-स्फुरित जीवन्तता पूर्ण बन
 माया है।

जीवन की परीक्षा में लौठी हूँ।
 मन का प्रथम पत्र लिखे—

सोचती हूँ

कीमती प्रथम पहले मैं हूँ कक ?
 तपनों को बोझ, या कि

सोचों को घटाऊ ?

रत्ना का चरित्र तीन स्थितियों से पुन
 रत्ना है ? नियम व्यतीत तथा स्मृति। कथा

कक स्वयं रत्ना द्वारा धारम-कथा रूप में
 कथित है। एक प्रमत्त ब्रह्म है, पहले
 परिणाम फिर प्रारम्भ सामाजिक-निम्ना के

सत्यम् व्यापार ब्रह्मत्वा से उत्पन्न इन्द्र,
 इन्द्र से निर्णीत संकल्प संकल्प अनित

श्रिया के चरित्राम की विभीषिका विभी
 यिका के प्रभाव से व्यापत परित्याप परि
 तान से अत्यन्त चिन्तना और चिन्तना से

संमित हो विभक्ति की मोर !

युव रोप-समाप्त की मुद-दक्षिणा

का मुदक क्या था ? 'संस्कृति की शोषी

का बहु सम्पत्ता का भीर जिसे राज्य का
 पुन्यासन बीच रहा है, उस सम्पत्ता के
 भीर की बड़ला है माया का मोह धाड़ना
 है 'हिन्दू का घोषा हुआ अत्यन्त प्रय चाये
 इसलिये स्मृति के बहुबल प्राचीन संस्कृति
 का मानन करना है क्योंकि मन्वीत है
 कोई पूज नहीं होती। (माया का
 संस्कृत हो बाहे जोक सया)।

एक तरह रत्ना के समस्त सांसारिक
 वर्तव्य (पति-मोह) है बूखी तरह
 मानवीय कस्याए की संवेतना है। इस
 पर पदे व्यापार वहाँ बसे बोध देते
 वहाँ उठकी वेतना को उसके चिन्तन को।

विज्ञासामय बना कर लूटा कर देते हैं।
 बहु सावर को पूजा के भेटने का उत्तर

दायी लुटायी है तर्क बसे विप्या लवता
 है क्योंकि तप्यों की पहुराई सम्भव तर्क

माप से, तप्यों की ऊचाई पर बड़ना
 मुदिकत है इसलिये माव भडा है जो

छोटे से बीषक के समान होती है परन्तु
 'निष्ठा में वहाँ बिबल से व्यापार पनडीक

इकाय होती है विनियम जीवन का त
 है—विनियम ही निष्ठास तर्क तो धीना

अपदी है, निर्णय के इस विन्दु पर साकर
 रत्ना विभक्ति की तरह बड़ती है बहुर
 है, 'सोचों के पहुरको। सब सा बावें
 मुदने दो माटी को। अन्तिम संघर्ष है व
 बहु पाँव किन्त नाँव से बावें मुदने रत्ना

एक में तुम्हारे ऊपर धापी हुई—बीजन का ध्यान यही प्रिय यही, तब ही एक में तुम्हारी हुई—राम नाम सत्य है ।

रामनामकी शब्द काव्य में कथानक का प्रयोजन है प्रतीक कर्मी कथना है, काव्य में सदात बक्षणाए है, भाषा में प्रवहना गता है, प्रेम और प्रणय में सम्पन्न स्वभाव का प्रकटा संस्कार है । हरि की का 'रामावली' शब्द काव्य अपनी गभी गता, अपनी परिपक्वता में महत्वपूर्ण प्रकृत है—स्वर्गीय कवि की शक्ति, परतु क की प्रदान है युग की कवि एक स्व स्वि से गया है ।

× × ×

★ विराम बिन्दु : अक्षर (पृ ७५, मुख्य ३०० न) से 'अक्षर' की के 'विराम बिन्दु' को के एक बिन्दुता के पदा बिन्दुता कि यह जान पाऊ कि कवि ने अपनी काव्य-भाषा में कितनी दूर पूरी और प्रान यह कहा कड़ा है ? या सदा की परिपक्वता ने, जीवन के मीठे-कड़ुने अनुभव ने उनके विचारों का कोई सुल-प्रपक्षित दर्शन दिया वा कवि पूर्व रूप से स्व-रति सोन प्रान की है, बंसा युक्त में वा शब्द कि वह अपनी मांसक परिष्कृत वासना पुरित काव्य बलि और निर्विचल ; रम्य कृति के कारण द्विती प्रातोचर्मी का लक्षण किन्तु बना वा । अपनी बुद्धि

की परवच्य मानतु कि मैं निरिचय निष्कप पर नहीं पहुँच सका कि 'अक्षर' अपनी रचनाओं में क्या है ? क्यों-क्यों सोचा यति प्रमित हुई यति की गई-क्यों-क्यों ।

एक तरफ यह प्रेमती को प्रतीत में डूबी बातें यात्र करता हुआ दिखाते हैं । (अपना बिन्दुताकुल सिर में हठी रंजित हथेलियों पर रख कर) जिनमें कितनी ही बरसाती रातें बिना लीये कट जाती थीं, और वह भीतर भाग्य रूपों का काजल देना करते थे जबकि बाहर प्रसन्न भरणों से बारस पूरा करते थे या फिर बोधहर को धारिणी की शिष्टी कन्धी प्रान की यति धारिका से सिखायत करवाते हैं—'करेसे यह हम तुमको प्यार नहीं क्योंकि मैं होती गरजन । सिखायत काव्य है, क्योंकि प्राण को प्राणों से धाके मीच कर बिना देते हैं और देखायी 'नयी नाम' (मानि नाविका) के तन में ली ली लहकन देते हैं मन मरिच से छींचकर । ध्यान-भाव की बात है—तन में, यानि देह में ली ली लहकती है । क्या करे देखायी-अपने भासों की भाषी में परमायी डूबती, प्रांचल में बस देती प्राणों से बवाती यह कहती हुई जानती है—'

कोई देस न ले फिर,
कोई देस न ले ली मैं जहाँ
करे तन में काव्य कपुटी
तुम कर देतो ही प्रानी ।

विहारी-रस शैलिकामीन युग के
 प्रथम प्राथमिक युग के कलाकार से,
 भूठ नहीं यदि शैलिकता तकनीक न करे
 तो प्रथम शै के वह शीत अपने में देखा
 तथा परिष्कार का अनुभव छोड़ते रखते
 हैं प्रथम शै की साधना की उपस्थिति
 उनकी कलाकारिता है जो कहीं बहुत
 रिक्तता है कहीं ऐसा पटकटी है कि शीत
 हो पड़ती है—यह शीतले हमें तो स्नेह
 के जो बूब माने भी नहीं मिलते । बूब
 त्रिभुजा में प्रयुक्त होता है या पुलिप में)
 तीन बातें यह फायुन की रात का पहना
 स्टैंडा जबकि पूरा कलात्मक रूप से
 सफल है ।

स्वप्न-वारी कवि की कलात्मक
 कल्पना कभी-कभी जब सर्वाप की शीतता
 से टकराती है तो यह शीतकार मर पड़ता
 है । कवि का हृदय रो उठता है, मर टूटो
 जो मेरे जीवन के संघित अपने मर टूटो,
 क्योंकि इन्हीं अपने में प्राणों को बलने
 की शक्ति दिखाई भी हूँ-हूँने मन का
 वही शीत ठिकाना या याबारा प्राणों ने
 वही अपने से तो समन लवाई थी । जहाँ
 कांटोंकरी विफलताएँ हैं—जहाँ बोलने का
 याबारा लपना ही है 'जसे मर टूटो वह
 संघित अपने से हो कहते हैं । एक बरत
 वह भी होती है जब कवि के 'मन का
 शीत 'मादहों का स्वप्न उसका
 'मरुत्तित पीत' हारों के बाबजूर भी

संकेतों की भाषा से बयनबाता जीवन,
 कि बिस्मयी 'जड़ती-ज्योति सिद्धा कर्म, विर
 पीकर' उजाला मर गया था, उसका वह
 बिस्मय जो सुजन की पीड़ा को भिन्नते के
 बाव प्राप्त हुआ था, शीत वही बिस्मय
 सचपों में पकता रहा शीत सुनता रहा-
 प्राय वही की सर्पी सजती है क्योंकि-
 प्राय प्रभावों ने बरत के
 प्राय मोली है खोजाई
 प्राय परोबी ने जा-जाकर

भन को अपनी भीख सुनाई
 कितनी बड़ी बिस्मयता है कवि की
 कितना नाटक युग है ॥ कितनी सफल
 सत्य तथा अन्तर-बहान प्रयुक्त परिष्कारिता है ।
 कुछ रचनाओं में देखा भी लभत
 है कि 'प्रथम' की की उन्नत समानियत'
 प्रकाशक कितनी प्रभाव-शक्ति, कि
 प्रथम शीतका शक्ति में, अपने बिस्मय,
 अपनी निष्ठा, अपनी उपासना का प्रामाण्य
 जोबरही है जैसे, है, है, महासागर मेरा प्रभाव
 लिये जाता कीर्ति, 'जिन यह केला तुम्हारे
 जन्म जन्मों के प्रमोही, 'मेरे बिस्मयों'
 बरतों जो मेरे मन के परिभाषी, प्र
 वहाँ कवि विस्तृत स्पष्ट हो जाता है
 जब अपने प्राणों के शीत' की परल-
 देखा देसता है । जिसको, केवल सुना
 उसके बिने संभव है उसे बोलने का बरतान

उठ नहीं है, बिलकूल प्रति वह मन की
 स्थिति तो रख सकता है। चरनों का मनु-
 मन वह नहीं कर सकता (नील ज्योति
 ज्योति-ही या बसती)

इसमें आश्चर्य की बात नहीं है ।
 नील की तानसी सासलाएँ यापु के साथ
 धिक्क होतीं जीवन मनुमन की चेतनाएँ
 किसी क्षणिक भावमन की भावनाओं की
 धिक्कता का साकार बनाएँ, और अपनी
 मूर्खता की लुप्तताओं तिलमिलाती विकस-
 ताओं से सम्युत्तरित भावनाओं की हल-
 कत को नील में बाँध लीं तो स्वाभाविक
 है ।

धर्म में 'धर्म' की के बारे में यह
 प्रश्न कहा जा सकता है कि कनकी
 भावुकता धर्म की धर्मों की हकीकत
 धर्मिक रहती है कि नील गहरी मनुभूति में
 स्नात निकसते हैं, जो अपने ककार्यक
 लोचन से पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं
 यह सत्य है कि 'धर्म' की का वातुक
 नीलकार धर्म की धर्मिका है जबकि इनके
 साथ के सम्युत्तरितताकारी कवि करीब
 करीब बुर से पये हैं—महान् बलीटे जागा
 धर्म अपने की मूर्खता कर अपनी पूर्ण
 धिक्कता को धर्म-धर्मता का ध्यान जाना
 दूसरी बात है ।

× × ×

★ प्राथमिक हिन्दी कवयित्रियों के
 प्रेमगीत—ए लेनचन्द्र मुमन (पृ ४१५
 पृ ७०० नये) प्रस्तुत संकलन में १७५
 कवयित्रियों के नील हैं, सम्पादक योगेश्वर
 'मुमन' की स्मरण महाने की उपस्था का
 यह स्तम्भक, संकलन का धर्मता महत्व है ।
 इसके दो कारण हैं—पहला प्रेम पुरुष की
 धर्मता नारी को स्वभावगत कोमल वाली
 है, यत उसकी निम्न-कोली दृष्टि धीर
 बहुली धिक्कता देखी जा सकती है ।
 दूसरा कि वह पता चल सकता है कि
 धर्मताकारी नील रेखा ने वर्तमान तक धर्म-
 धर्मता कितनी नयाई नारी है । कितनी
 कवयित्रियों धर्मन के प्रति आपकक धीर
 साधनारत है कितनी ऐसी है किन्हीने
 छोटी सपने का सम्मोहन रखा है । इन
 नीलों में एक धीर वहाँ भावना की
 रंजकता, कल्पना की मोक्षकता मिलती है,
 वहाँ इसी धीर नारी की अपनी निम्नता
 उसकी धिक्कता भी मिलती है । एक धीर
 लक्ष्मणता करे के सामने रह गई मुक्ति
 करवट नहीं, धीरे कल्पन स्वीकार किया
 की निर्णय है, तो दूसरी धीर धर्मिता
 तिहल की धिक्कता है कि वह निम्नता
 की धर्मता धीर बरदान की कामना कम
 तक करे बर्बाद, जब तुम्हीं धर्मज्ञान
 बन कर रह पये धिक्क की पहिचान लेकर
 रखा कर्ण, नारी ने लोकरुत में वही सचता

का परिवार प्राप्त किया है वहाँ बस्को
 दिवनी संदिग्ध घोर यमुनाओं की दृष्टि
 से बचा जाया है बस्को पीला गुला इन
 पत्नों में समिप्यक्त करती है:
 मेरा एक चरित्र, निवाह साकों है
 विभिन-विभिन कोलों से बुनियाँ पाँच रही
 अपनी मन मरबी से बसे परों को
 बटा बटा कर लक्ष्मियों से भाँक रही।
 पीला गुला के पुरप के यमुनाओं का घोर
 इसके बसे परों का सत्य बोना है, तो
 बम्बवती मृदुपय केन ने नारी के प्रबला
 "मे की स्वप्नोक्ति की है, 'तुम सबन हो,
 'क बिपर बाहो पयो प्रिय कोन रोके,
 मे हितार्थ जवासिया की, तो मुझे यह
 चिरव टोके।

दिवी के कुछ घनामी दिग्गजों
 मासोचकों की करे-कराये पर बून बालने
 की पुपती भावत है। एक बम्बवती रंवीन
 छाताहिक के बम्बवती स्वाह बसे मासोचक
 महापय को इस संकलन में नीत के नाम
 पर लिखी मुने मुनाई की, बम्बवती फलवा
 विवा कि संकलन में कुछ नीतों को छोड़
 कर बाकी सब बेकार नीत हैं। क्या कहा
 जाये निज कलम बनी कोतवाल तो फिर
 बर काहे का ? केट एक मजक यह भी
 है, वहाँ मोहक कल्पना अपने बुरे लीच्छ
 बहित प्राय है:

भविनाय के नीत का मंदिर बिपर,

यमुना के नीत का मेघबरा माकाय बर
 में बीरवा भिमुपा बूब के चौर वा नेन
 में ठेर कर घबर-कुई में पुनक बसना
 कल्पना बीभरी के-कल्पना के बके हुए
 हरकाये पुष्पा पुगी का सुप-का राबमुकुट
 दुख के सिर पर भरना 'मनु पवित्र की
 'मीवी कोपन की मुटभरई' याँकों के
 ठारे का दृटना मानती बोधी के 'सग्यों
 वा कल्पना के यानों में बंभना घोर नयन
 के यमुना बल में पहचाने हुए चरों का
 बहजाता, रमा सिंह के 'नयन में बोधुति
 के वारन उठना 'राजकुमारी कीत का
 पलक में स्वयं वा बल नर कर ब्योब
 की सिजिज रेखा से घटन बिबवाली का
 सम्बस लेकर निष्ठा को बीबा निडा।
 सवे हापें पर सपनों के बंदवबार का,
 बाना जमकती हुई बालिनियों को पक की
 बहेमी बनाना रेखा रामानभ की पीर से
 बापाल का बिबलना घोर चौर के प्राण
 का होकों पर घाना 'बीरा की 'परमी की
 हकी उरवा का किती नबोड़ा के उत-नन
 में केबे की बू बों-स भरना, हाप में मँहरी
 रबने से बधियाँ में क्यपुन का बीराना,
 मुनहरे स्वर्नी का बंवा-का घोचन
 में बल कर घाना शकुन्तला सग्यों की
 पुकार का बल मुबना को बुभना सा बंरना,
 पाबी की घाबों पर घोव का मूना
 बालना होवी के बोले बर बालों का मूना,

कुसुमा कुमारी मिश्र के 'तुम' का 'रिमि
 रव वर बभाकड़ होकर मुखा—नाम में
 कुसुमला घोर, बतके' हृदय का प्रस्न के
 बिन्दु-सा प्रोच वा कण्ठ बन कर घाना
 घोर यह में हीरकों क मुकुर का बिन्दुवा
 का' घादि ऐसी ही कल्पना है जिनमें
 नवीनता तथा भावना प्रोच प्रोच है ।

यह बाध एक भ्रमक है, बरना
 संकल्प में संकल्पित बीतों का स्वर कनकोर
 यही है, काखी कवयिचिपी ऐसी है की
 यपने में सम्भावनाएँ क्षिणाएँ हैं जिनको
 यदि बीजन उपयुक्त वातावरण दे सका
 (जो कि अर्द्ध-वस्त्र भारतीय भाषी की
 सामाजिक विषयता है) तो निरिषय-ही
 घाने बाली पीढ़ी में महारथी सुमनाकुमापी
 कुमिकाकुमापी । विद्यावती कोकिल बंधी
 कवयिचिपी निम कायेंपी ।

—राधाजनक

× × ×

★ 'जब' सं विद्यानिवास मिश्र
 (पू २३२ सू २०० न १)
 पी विद्यानिवास किय ट्राण बम्पा
 कित इत्यस्य है भागिन के पार डार
 तक वा प्रमूर्छ छा प्रक्षेप । नहीं उचित
 का बिन्दु कविता जीवन घबने व्यक्तित्व
 उचित कुना है । घदी घझनी पंक्तिकों
 के भाष्यप ले में बृहत्काय विचारप्रसव

कवितावादी कवि को यह मेना चाहता
 है ।

धो पिना... मेरा हिवा तरसा
 की प्रकुसाहट सिये हटी बाध पर बठे
 प्रक्षेप में सिखा वा 'सोया है श्लेष प्रीथि
 याभा नवी की बनि वर ।' बिन्दुना सुनहना
 पंथी हैह की सू भर कर छड़बादे पसका
 प्रकुमाना स्वामाबिक है घोर यह प्रकुसाहट
 अतुपच के प्रागमन पर प्यार की, दुखार
 की नून बया दे ती प्राहवर्षनया ? यतुति
 एक-उदासी को बाध देती है घोर वह
 उदासी समी कुछ मरउबर्षा घानने की
 बिबध कर देती है । यरने के लिए बीजन
 बीने बाने प्रक्षेप पदा महीं किछ हृदय
 यहस्य यक्ति से अरिष होकर कह रेते है
 में भास्वा है मुक्ति का स्वास है घोर तुम
 मिट्टी मठ छोड़ना टोहना मठ कमी
 धेनकार को । यही भास्वा नवी का हीन
 बन कर स्थिर समर्पण कर देती है—
 इसलिए कि बहुना तो रेत होना है ।

यह समर्पण कल्पवृक्ष कापापी धाभात्री
 की नीचे-बान की मक्ति की प्ररसा हो ।

बिबिध मायावर जीवन बीनेबाने
 हिन्दी कविता में अन्धपलुवापी धान्दोलन
 के प्रवर्तक प्रक्षेप ने बीजन को प्रबिक
 सन्दर्भों में रीखा है, यन्क बिता पापघर्षों
 में के स्वय को कुजाप है, यही नारण है
 कि घने । बिबिध विचारवस्तु प्रमुनूत घनि

पंक्तियों के सृष्टा हैं ।

पौखोलिक बस्ती में विनयियों का रूप, विपणनायें और छत्रती-यात्रायें देखने वाले अज्ञेय धान महाभोग की कठिना में झुबने-सठारते असाध्य बीखा ही अविश्वसितियाँ दिये जा रहे हैं, हिन्दी कविता को अपनी सम्पन्नता पर गर्व है । सम्पादक को संक्षिप्त से सम्पूर्ण अर्थों के अस्तुतीकरण के लिए बधाई ।

× × ×

★ ध्यान के द्वार द्वार अज्ञेय (पृ ६०, पृ ३०० न १) एक लीले हुए शायी का आत्मोन्मुखी अस्तमंवादी विराम परम्परा के अनुवायी (सावेयी ।) का नवीनतम अस्तम-आत्म के द्वार द्वार-विशेष साहित्य का एक साध सममता पर आइया है-कविता के रूप में समाश्रोगुच्छता के रूप में प्रथित मार्ग (अर्ममुप में) की भाति पंक्तियों के माध्यम से मानवीय आचार पर लोकोत्तर कला के प्रति बोधिक समर्पण करनेवाले पायी-अज्ञेय एक एक साध का अर्पणता सम्भव न ही ।

अज्ञेय नाम के साध ही एक अन्वीर अविश्वस्य सामने आता है विषयक कविता-मूलक तीन पंक्तियों से तीन ही से अधिक पंक्तियों की कविता एक विस्तृत हुआ है और इन कविताओं के पुन स्वर

एकान्त तीन, धारणयल अत्य परिष्कार, समर्पण पीक-बीक की परिभाषित विर्मलता मानक संकृति का ईश्वरीय आचार आदि-आदि रहे हैं ।

अज्ञेय एकान्त-अर्थ है, अज्ञेय कवितावादी है अज्ञेय अपनी कविताओं में मार्शल या स्पष्ट की प्रपत्तियों से बहुत दूर जाने पड़े हैं यह सब स्वीकारते हुए भी उनके कृतित्व में सुधी हुई अनात्मोन्मुखता कई बार प्रयत्न विन्तु ही बना करती है, ऐसा साहित्य के कई साध आम लोभते हैं ।

यह सोचना इसलिये भी स्वाभाविक है कि अज्ञेय व्यक्ति के अस्तित्व और उसकी अज्ञेयता के विचार में मार्शल के अधिक विषय है कि अज्ञेय की विराम नारा बोधकर्म के अन्वय से प्रभावित है कि अज्ञेय ईश्वरीय अज्ञेय के विरोधी विरोधी हैं पर अज्ञेय की कहीं अस्वीकार्य नहीं और कि अज्ञेय आस्वात्क नवीन अज्ञेयों की अज्ञेयता करते हुए भी अज्ञेय और हीन एकान्त विराम के अज्ञेय में महा पुन्य के साध आचार ठेरी एबी मकी ही आत्मोन्मुखि करते हैं-यही उनकी 'अज्ञेय' के 'तुम' ठेरी एक आनेवाली समाश्रोगुच्छता है अज्ञेय के पाठक किन्हीं अज्ञेय के गुणानु मूलता के नाम पर अज्ञेयण और 'अज्ञेय' के अज्ञेय पूर्ववर्ती कविता (साधवादी अज्ञेयवादी आशुवादी ।) के समस्त पूर्ववर्ती

ने त्याकने के धान्दोलन को देखा होगा,
हैं समक पा रहे हैं । उन पाठकों की
ह लासबभी को स्थिति-बन्ध विवसता
ने कहा का उकता है ।

विपरीत कोशों को सुतकों से
देना महत्त्व-मूर्त है कविता को हटा
र आन्तरिक पांडु के साथ व्यक्तिव के
सिद्धि की घोष के प्रयोग करना नहीं
मे ठानर, हीव को बधनी बनाना प्रजेय
ने तीव्र विज्ञासायें हैं, धीर से विज्ञासायें
भारतीय चिंतन साहित्य की ही नहीं
मस्त मानवीय चिंतन की उपबन्धि हैं ।

प्रजेय विरुद्ध मीन में समस्त
आसनाओं का हाह कर 'धो नि' सेयस्
त्वर्धिय्य' का निर्देयविक्रम प्यार प्राप्त
करना चाहते हैं ने महाभूम्य के धिभिर में
रहते हुए प्रकाश के पारावार तक पहुँच
बाना चाहते हैं ।

प्रजेय एक प्रजेय हिन्दी कविता हैं,
प्रजेय विशक है शार्चनिक है धीर संस्कारों
से मुक्त यह कवि आरहीन गुण से ध्या
आ रहा है । इस निरत चलने
प्रक्रिया में 'तु' मगुठा होता है या नहीं
यह तो नहीं कहा का उकता हा हिन्दी
कविता प्रजेय के साथ निरंतर मगुठी
परिष्कृत मनी होती वा रही है प्रांगन
के पार द्वार इका पुष्ट प्रनाथ है ।

पर नई पीढ़ी के साहित्यिक छात्रों को
प्रजेय के कृतित्व में समाजोग्मुसता पर
मने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा रहेगी ।
बहुत सम्भव है, यह प्रश्न अनुत्तरित ही
रहे क्यों कि परिष्कृत-प्रोढ़ कविता का
बर्तक घोः पूण्य की धोर उगुण्य होना
कविता की स्वाभाविकता माना का
उकता है, भारतीय चिंतन तो बर्तन की
भुटी पर ही घुमता है फिर प्रजेय की
स्वयं भूम्यवादी चिंतन के यधिकारी
विद्वान हैं । फिर भी प्रश्न तो मकानत
ही रहना बतर माने तक ।

—हरीश मन्वानी

★ काम्य के पून : भारतभूपण यप्रधान
(कुष्ठ ११६ मूख्य ३०० नय) श्री भारत
भूपण यप्रधान की उच-बन्धासित तुत्तिका
'काम्य के पून' बैकने को मिली । यल
कर में ही मन में एक 'कच्छ्राट' प्रकट हो
भाया । क्या यह बड़ी भारतभूपण यप्र
धान हैं वो हिन्दी काम्य में नवीन चेतना
के उत्तरवायी संवाहकों में से एक है ।
कहा का उकता है कि हास्य का यप्रधान एक
मलय बायरा होता है धीर गाम्भीर्य को
उल्लेखे आलभुम्कर तोड़ना ही पड़ता है,
किन्तु भाई मन्वानीका को तो तोड़ने वाले
नया हिन्दी में प्रथम हो एकमात्र महारथी
बन रहे थे ? क्या गोपालप्रसाद व्यास,

केसवचन्द्र वर्मा, काका हापरसी बैचक
 बनारसी प्रभृति हास्य-व्यंगकारों की कलमों
 को सकुचा मार गया वा ?

किन्तु दरमसत बात कुछ और ही
 है। कुछ ईबाब हो कोई बरम्परा बने
 अपने भी नाम से बच यही एक मुझ सबके
 छन्दर मूसबप से विशयमान है। प्रज्ञेय
 जैसे समर्थ और तटस्थ हट्टा भी जब इस
 प्रभृति के अपबाब न हो सके तो हम
 पापकी क्या बिसाब है कि हम जससे बच
 रहे ? फलतः एक नहीं बहुत से 'कापब के
 पूज' बबल-बबल कर सबाए बाएँ
 साहित्यिक झुझप कर्मों में बाहँ जमें बजल
 हो या नहीं। तुमलकों वा यह जो बड़े
 ब्यापक वेमाने पर पाज हस्ता हो रहा है—
 वह एक बने बनाए रटक के घनाबा कुछ
 और बिबाई नहीं देता (करीब-करीब
 बैसा ही एक स्टम्टा जेता घनी दल रिनों
 बचबत और पग के बीच में सुरु हुआ
 बिबाई देता है) बरला क्या कोई भी
 समझदार पाठक इस बात की गवाही दे
 सकता है कि तुमलक समसामयिक लेखन के
 समानांतर प्रकटी एक अपरिहार्य परम्परा
 है (टीक सती प्रकार जिस प्रकार प्रबोध
 बाद और नई कबिता कमी रही थी)
 यदि नहीं तो प्रदन उटला है
 कि व्यक्तिगत मूर्खों के इन तुमलकों को

पुस्तककार रूप में संघीज कर क्यों
 प्रकाशित किया गया है ? क्यों भारतभूषण
 के नाम पर भारतीय ज्ञानपीठ से प्रका
 शित होने वाली किसी ग्रन्थे स्वर कं
 हूठपी कृति को केवल इन तुमलकों के ब्या
 से प्रनाबरक रूप से स्पष्टित किया गया ?
 ये सब बुनियादी बतें हैं जिनका बरार
 मिलने से पूर्व काव्य के जिज्ञासुओं पर
 ऐसी प्रभृतियाँ महज इसलिए पोप दी
 जाती हैं कि इनका समारम्भ एक ऐसे व्यक्ति
 द्वारा हुआ है जो घुम फिर कर उसों
 हामियों के लिए कभी काम का साबित
 सकता है।

हिन्दी के प्रागुनिक साहित्य का
 अपकर्म बहुत इद तक इती प्रकार के निष्ट
 पैपण द्वारा हुआ है और जब तक इसके
 विरोध में कोई प्रबल मावाज नहीं उठा
 जायगी तब तक पाठक का सोपस हा
 नहीं होगा। प्रागुनिक हिन्दी साहित्य
 लेखक-पाठकों की जितनी संस्था है जा
 कबाचित पाठकों की भी नहीं है। यह १९००
 के मधिय के लिए बड़ी बिता की बाज
 है। इसलिए इन तयाकबित लेखक-
 पाठकों ही प्रसंता प्राप्त करते जो माने
 बलते रहना चाहते हैं के सिज साबक
 हिन्दी के घमिय होने के घनाबा और कुछ
 नहीं हो सकते। बचबल मयवा माबने की

व्यक्तिगत रूप से वायु वायुमंडल के अणुओं को
 धरती के सतह से उठाने के लिए वायुमंडल के अणुओं को
 धरती के सतह से उठाने के लिए वायुमंडल के अणुओं को
 धरती के सतह से उठाने के लिए वायुमंडल के अणुओं को
 धरती के सतह से उठाने के लिए वायुमंडल के अणुओं को

समय में एक साहित्यिक, मित्र ने कहा—
 'कायक के फूलों में कमी न मुरझाने वाली
 जो लयता होती है वह हममें कदापि नहीं
 है— हमें एक बार देखकर ही दुबारा न
 देखने की इच्छा हो जाती है— कायक के
 फूलों का सौन्दर्य कम से कम इस धर्म में
 मुरझाने वाला होता है कि उद्यम में नरक
 करने में बाधक प्रदर्शन किया गया होता
 है। पर यही रंग-रस हीन कायक के
 दुकने हैं जिन्हें फूल कहकर हमें भरपाया
 गया है।

इसके साथ-साथ ही यह भी स्वीकार
 करना पड़ेगा कि साहित्यिक जीवन के दिन
 बहुत से पशुपुत्रों को भी बाधक रूप में
 स्पर्श किया है वे नीचे लिखे पुस्तकों में
 प्रकट हुए हैं।

(१) 'कितने' रसद वाला तुषटक
 (परीक्षादिनों तथा सिद्धारिषदाजी पर
 ध्यान)

(२) वा सा रे ते वा-गा-मा-पा साधना

(३) बुन री धो देहर रो—

(४) भूष की रस की

(५) रात केटी

(६) कायक धीर साधनाही नहीं
 नहीं किन्हीं

(७) हिस्नी बम्बहया शैत

(८) हर के अनामकी ने उठाना
 कमपन्न

प्रस्तुत पुस्तक के व्यक्तिगत तुषटकों
 में रामदेव, निरिबाहुमार, माधवे मुक्ति
 बोध, धर्मोप धारि पर लिखे गए तुषटक

- (१) धार्मिक सामाज्य जीवन के
 तुषटक
- (२) व्यक्तिगत तुषटक
- (३) निहायत निरर्थक तुषटक।

विश्व हास्य ध्यान की एक परम्परा
 होती है। भाव और अभिव्यक्ति में वह
 सूटे मजरे पिचकों की भांति 'मर्दपत्नी'
 कमी नहीं होती और यह कि साधारण
 धर्मवादी धार्मिक भावों और धर्म
 साम्यताओं का प्रतीककारण हास्य ध्यान के
 माध्यम से प्रदर्शनों का सूत्रकार है। इस
 हेतु ऐसे साहित्य में स्तर को कायम रखने
 की बड़ी आवश्यकता रहती है। क्योंकि
 भाव नहीं ही सरलता से व्यक्तित्व धारण
 धर्मवादी कठुवा ठक या ठकती है और धर्म
 विषय के बटिया होने के साथ ही हास्य
 ध्यान का स्तर भी उठना ही बटिया
 हो सकता है। इन तुषटकों को पहले

ठीके हैं—पारब बयानालगर वासान, तिबी
 प्रादि पर सिधे मये तुफतक केवल होबी पर
 बिदे जाने योग्य हैं । प्रमथपा बेनिडक
 बिदेव को बङ्गानेवाते लाविठ हो सकते हैं ।

इसके प्रतिरिक्त निह्यमल निरर्थक
 पुस्तकों में (१) मोठी मे दिने के एक साध
 साध लिखते (२) मधेरी गजो मे बब कुता
 एक भौका (३) जंबम मे पुरुष के काटने
 को लकड़ी (४) मोर भी न भाई धीर
 बिने भी न तारे (५) रिमने ना इन्द्रज
 धीर कवि (६) गरोडा को रोडा प्रादि
 हैं । ऐसा लगता है जैसे पुस्तक की वृद्धि
 वृद्धि के लिए बह सब किया गया है । जत
 में हय इतना ही रहेंगे कि भी भाट्ट
 भूपण को अपने मनुपुत्र यह कार्य छोड़
 कर पुन कविता के क्षेत्र में परावर्ण कर
 सना चाहिए । एक विनोदी श्रीर हास्य
 व्यंग्यकार में मन्तर होता है यही ध्यान
 में रख कर एक सुनठक हमने भी लिखा है
 यह इस नीयत से नहीं कि पुस्तकों की
 यमल परम्परा में यह भी एक योग्य हो
 बल्कि इस नीयत से कि हिन्दी काव्य से
 यह निर्गक परम्परा जल्दी ही समाप्त हो
 जानी चाहिए—

रक्तर के मातिक को कहते हैं बाबू
 बिह्व सिद्धने वाले होते बिकारू
 खीड़ काव्य मुक्तक
 लिखने लगे पुस्तक
 ऐसे विनोदी नए सर्वक है जानू ॥

★त्रिबीधिया डॉ० महेश्वर मटना
 पर (पृ० ८७ सू० १०० मये) 'त्रिबी
 धिया' में डॉक्टर महेश्वर मटनावर की
 १९४७ से १९५६ तक लिखी तथा प्रका
 शित हुई कविताओं का संग्रह है । इनमें से
 प्रत्येक रचनाओं सब हाण बर्ष के प्रति
 प्रोपेसिगिस्ट सहायुग्मूति बहिर करती है
 तथा धेय रचनाओं कवि के वैयक्तिक प्राय
 वाद को प्रकट करती हैं । इन रचनाओं में
 कवि अपने को बर्णनात्मक गद्य के प्रयास
 हीम स्वतः तक खीप ले जाने की सीमा तक
 सरल हो गया है काव्य में सरलता का
 प्रकट होना उसके प्रसाय दुख को व्यक्त
 प्रकट करता है किन्तु 'त्रिबीधिया' की
 सरलता में त्रिभूता नहीं है इसलिये इसकी
 कवितायें अपनी मात्र भूमि में काव्यात्मक
 होती हुई भी बाह्याभिव्यक्ति में प्रयासित
 गद्य ही अपने समती हैं । पाठय पुस्तका
 एक पाठस को अपने में समाहित करती
 हुई त्रिबीधिया की रचनायें किसी भी
 भांति अपने समय में लिखी जा रही 'बी'
 खैली की रचनाओं में भी नहीं पाती ।
 कोई भी पूर्ववर्ती छायावादी प्रथवा प्रयति
 वादी कवि अपने कव्य घोर अभिव्यक्ति से
 डॉक्टर मटनावर से अधिक प्रभाव पाती
 हो सकता था । इस हेतु १९५२ में पुस्तक
 का प्रकाशन तो घोर भी प्रभावशालक
 प्रतीत होता है । इसे मुझ कई प्रथवा

मुझ कि डॉक्टर प्रोफ़ेसर सनजामिक सुजन
 है छिपाए ही कर गये हैं समसामयिकता
 य कोई भी स्वर उन्हें छु नहीं सका है
 पीर देखा बरठा है जैसे मैं इसके साम ही
 शक्तिविक्रम प्रतापविक्रम मे भी मुक्त हो
 गये हैं 'त्रिबीजिया' की कविताओं को
 अपनी पुस्तिकाओं के सिधे हक तीन भागों
 में बांट सकते हैं ।

१ वैपथिक वातावरण से प्रेरित रचनाएँ

२ प्रीनेटेरियट की रचनाएँ तथा

३ धारधर्मोन्मुख यथार्थवाद की हम तुम
 वाली रचनाएँ

बहुधा सोझी की रचनाओं में संकल्प-
 विष्णु 'अप्रतिहत' न स्पष्ट बरतल उद्घाटन
 'अविषय' नामक रचनाएँ धा सकती हैं ।
 वे रचनाएँ या तो व्यक्तिक प्रत्याहार की
 मरौबिका में बरकी हैं या धार्मिकी प्रविष्ट
 की मुखर कल्पना में डूबी हुई थी लगती
 हैं । अल-कल को नीचे घोर आत्मसात
 करने वाला धार का कडाकार इस प्रकार
 के धारधार को बची थी यत्रिभ्यर्चना के
 बोध नहीं मानता । इन रचनाओं में कहीं
 भी ऐसी पंक्तिवा हुकने पर नहीं मिल
 सकती जिनमें स्वात्मिक का भार हो ।
 कवि की बहिष्कार विविधतः वैपथिक
 संदर्भ में जितनी हो सकती है उतनी
 किसी प्रस्य क्षेत्र में नहीं किन्तु इस संदर्भ
 में यदि कोई 'त्रिबीजिया' का रहे तो उसे

निराशा ही होगी ।

'त्रिबीजिया' की प्रीनेटेरियट स्पष्ट
 की रचनाएँ बरकर ऐसा बगठा है जैसे
 पात्र भी दक्षित बर्तों के प्रति सहानुभूति
 रिक्ताने वाले कितनी भी ध्यति को एकाएक
 कवि बनने का मुखमंतर मिल सकता है ।
 मजदुरों की बीमत्स चिन्तनों यद्यपि इनकी
 रचनाओं में नहीं है तथापि इन कविताओं
 के स्वरों में दक्षित वर्ग की चिर परिचित
 मायों तथा उनको सिधे जाने वाले समाज
 वाली धारधारकों की धारधार पुनरावृत्ति
 हुई है । मैं कहता हूँ, 'राही' यमुष्कान'
 ब्यस्येन 'निरक्षर' 'मुक्तता होमा',
 'तुम धार निव लो, 'जनता' 'अधिक',
 'नयी मुक्त घोर को मजदूर किशन'
 प्रकृति रचनाओं में प्रीनेटेरियट न्यूटोपिया
 के स्वर मुखरित सिधे गये हैं ।

धारधर्मोन्मुख रचनाओं की 'हम तुम'
 लम्बीबन वाली रचनाओं में विष्णु न हारो,
 'भ्या' हूँ मैं यह पता है यह नहीं मजिब,
 तुम्हणों का स्वाम्य प्रकृति रचनाएँ अम्मि
 मित की जा सकती हैं । कवि हमारी
 तुम्हारी पीड़ाओं को मज विस्मय के मत-
 इन से उपनाथि करता जाहता है ।

'त्रिबीजिया' की बहुत ही रचनाएँ
 तो अपरिपक्व भाषा के उदाहरण प्रस्तुत
 करती हैं । पचा —

जड़बर्तनी व पत्थरबर्तनी प्रयोग से
को घाब पुनः की हारत से
विद्यता बना बर्त
बहु कम

प्रमाओं की दृष्ट प्रकृत बन करते
दुनियाँ का नभना
बनल कर रहेया ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९६२
के घनेक साधारण स्तर के प्रभावस्यक
प्रकाशनों की मूलता में हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय, बाणखसी का बहु प्रकाशन भी
एक योग ही है ।

—प्रकाश 'परिमल

★ नीत भी प्रवीत भी नीरव
(पु० १०३ पु० ३०० बने) नीत भी
प्रवीत भी' नीरव के लये-पुणने नीतों-
प्रवीतों का संग्रह है । जहाँ तक नीतों का
प्रश्न है वे समयसय सबके सब विभिन्न
पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, समय
समय पर उन पर विचार भी हो चुका है ।
वे सब अच्छे लगते हैं । नीरव के नीतों
की प्रपनी टीनी है प्रपना कव्य है । पुणने-
वन के नाम पर उन्हें क्रोसना अच्छा नहीं
बर्णिक कव्य घोर टीनी के पुणनेपन के बाव
बुन इन नीतों में एक नवीनता है घोर
बहु नवीनता नीरव की प्रपनी है-मन्ने
बुनने में वे अच्छे लगेंगे ही । घोर फिर
नीरव कम चाहता है कि लोग उसके नीतों

को सराहें ही बहु तो कहता है—
बिनावा जाये या न जाये, लोग समयमें
या न समयमें
या वसे हैं हम यहाँ तो नीत गाकर
जठेन ।

कुल नीत तो बहुत ही प्यारे हैं यवा
'साठ बन बँबाप होता' साठ जय मन्बुन
लगता है सब सहा जाता नहीं घारि ।

कुल समय पूर्व नीरव पर ए
घारोप मयाया गया था कि बहु बर्धन ।
बाबर घोड़ने का प्रसक्त प्रयास कर
है । कबीर घोर नीरव की परम्परा में
बिचने का उनका प्रयास-घामास कुल
ऐसा लगता है बवा-माओ । दुनियाँ पर
सब मैका एवं 'या' बन मरन व बाँडे' घारि
नीत पर सब पुछा जाये तो नीरव का
प्रपना कोई बर्धन नहीं है । घोर प्रपर है
तो उसकी कृतियों में पूर्णतया जनता नहीं
है । फिर यह प्रतिभायं कम है कि नीतकार
बर्धन रहे ही । प्रपना लये नीतकारों पर
नीरव का प्रयास निबिबाव है घोर नीरव
प्रसिद्ध भी नीतकार के रूप में ही है ।
बिन्दु इस संग्रह में 'घगीत' भी है । लगता
है प्रयात किया है नीरव के अपने प्रापको
'नये-कवियों' की संकित में खड़ा करने
का पर जब 'बनी-निर्बन' घोर 'नवा
हिंसाव वीठी कवितायें' सामने घाटी हैं तो
लगता है, नीरव प्रपनी बहुत पीछे है ।

घामर हिन्दी में परम्परा ही कम पड़ी है, एक ही संप्रदाय में हीत प्रणीत, बोझिल शोकबुन, सब कुछ देने की। बल्कि 'के बार के में चौकट खूटे' और प्रस्तुत संप्रदाय इसकी शास्त्री है पर मन्दा हो यदि एक ही संप्रदाय में विभिन्न प्रकार की कवितायें ही कामें तो उनका अनुवाद हा तर्क उनको एक दूसरे के अन्वेष्य में समझा जा सके। बैसे पढ़ने पर के सिरे ऐसा संप्रदाय कोई विशेष प्रामुखित नहीं।

—तीता बटभार

★मुनि-सपनों के तीर मलि मनुकर और रो भोकर ही तही मुझे मिलनी बन पाई है कभी-कभी फलन काटकर मैंके एक बपह बुटाही है—और मलि-मनुकर की इस कभी कभी फलन (मुनि-सपनों के तीर) में बहो भाग्य है जो फलन की कभी पकड़ी घमास की फलन में होता है। 'हर करम पर खैकड़ों बम चाहने वाला यह माहुक मुनक कवि बचपन को प्यारी तुलनाहक का समेटे घाले बाल कस के प्रति नई धारणाओं के सकेस होता है—'मोठ बुर मोहवाज जीने के सिरे।

प्रस्तुत पुस्तक का कवि अपने घाम को दर्शित रहा है। घाघा-निराशा और हार का एक निराल सा पाठा है, वह अपने में। कभी तो उसे अपने घाम पर इतना विरासत होता है कि वह ना चट्टा

है और कभी उसे अपने प्रति एक विरलित भिरे बलमय मर जाने का सपना पठु का है बहार को मधुकर बलि रोज रोज सज्जन से मुझे संवार रहे हैं। ही होके सगती है।

येच नाम छया या बिधमें बहु कासम बचनाम हो गया। कहना न होवा कि पत्र की यह अनिरुधता कवि के इरादों को एक नया बन सा दे रही है। शीतों में मधुकर ने बड़ी अधिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। गया वाली को 'क्यती पिय ही प्यारी पतिहारिन' व बीर को 'बिबवा मलिहारिन' की उपमा देना तथा घाम को चट्टी घाघाओं के सिरे विरलित से डर कर छामाये पसर बनीं विरलित कहना कितना प्यारा जगत है।

गीतों के परिचित पुस्तक में मुक्त-धर ही कवितायें व मुक्त भी हैं। कहना न होवा कि मुक्तधर में कवि नहीं अधिक बचप है। शीतों में ही कहीं कहीं बहु सचमुक ही दर्शों में बच गया है। और अपने इसे स्वीकार ही है—'मिरा बंवार एर नजरबंद है संवों की बसो में। मुक्त धर ही कविताओं में 'सम्बोजन हीन' अधिरे में पास-पास घादि कविताओं में अधिव्यक्ति कहीं अधिक मुकर हुई है।

राजस्थानी कवि की बचनो भावा है। घाघा अनुभूति की पकड़ और अधि व्यक्तित्व की सम्पूर्णता राबराबानी शीतों में बहुत जगह देखने को मिलती है।

मनुकर की यह पृथ्वी कृति घाले

उद्भवों व महात्मनों प्रयोग से
को मात्र पुन की हारत से
विद्वान् जना बर्ष

बहु कस
प्रमाणों की हक सवित बन करके
दुनिया का नवना
बन कर रहेया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९६२
के पहले साधारण स्तर के प्रभावस्यक
प्रकाशनों की श्रुतता में हिन्दी प्रचारक
पुस्तकालय, बाणखुसी का यह प्रकाशन भी
एक योग ही है।

—प्रकाश 'हरिमल

★वीथ भी धवीथ भी नीरव
(पृ० १०३ मू० ३०० नवे) वीथ भी
धवीथ भी नीरव के नय-पुण्ये वीथों-
धवीथों का संग्रह है। जहाँ तक वीथों का
प्रश्न है, वे लगभग सबके सब विभिन्न
पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं, समय
समय पर उन पर विचार भी हो चुका है।
वे सब अच्छे लगते हैं। नीरव के वीथों
की अपनी धीसी है अपनी कल्प है। पुण्ये-
पन के नाम पर उन्हें कोसना अच्छा नहीं
क्योंकि कल्प घोर धीसी के पुण्येपन के बाव
बुर हन वीथों में एक नवीनता है घोर
बहु नवीनता नीरव की अपनी है-पुण्ये
पुनने में वे अच्छे लगे ही। घोर फिर
नीरव कम जाह्ला है कि लोग उनके वीथों

को सराहें ही यह तो कहला है—
बिच जाते या न जाते, शोच सबने
या न समझे,
या घये हैं हम यहाँ तो पीत वाकर ही
उठें।

कुछ भीत तो बहुत ही प्यारे हैं य
साधन बन बंधार होता साधन बन मनु
मगता है सब सहा जाता नहीं' धा
कुछ समय पूर्व नीरव पर एक ।
भारोप लगाना पया था कि बहु वर्धन की ।
जावर मोठने का प्रकरण प्रयास कर रहे
हैं। कबीर घोर वीथ की परम्परा में
सिद्धि का चलका प्रयास-प्रामास कुछ
ऐसा लगता है यथा-माओ। दुनिया का
उन सिद्ध एवं 'माओम मरन न जाऊँ' धारि
भीत पर एक पुण्ये जाये तो नीरव का
धपना कोई वर्धन नहीं है। घोर धपर है
तो उसकी कृतियों में पूर्णतया जमना नहीं
है। फिर यह धनिर्वास कम है कि नीरवकार
वर्धन रहे ही। अपनी लये वीथकारों पर
नीरव का प्रभाव निश्चिन्त है घोर नीरव
प्रसिद्ध भी वीथकार के रूप में ही है।
किन्तु इस संग्रह में 'धवीथ' भी है। लवता
है, प्रयास किया है नीरव ने अपने प्रापकी
'नये-कविता' की संकलन में बढ़ा कर
का पर अब 'धवी-निर्धन' घोर 'धवा
द्विवाक वीथी कवितायें सामने धाती हैं तो
लगता है, नीरव अपनी बहुत पीये है।

छापर हिन्दी में बरम्भ ही क्षम
 परी है, एक ही संवह में भीठ प्रमीठ,
 तोड़वीठ कोकधुन, एष कृष्ण देने की ।
 बन्धन के बार केने चौकठ कूटे' पीर
 बस्तुत संवह दसकी लाली है, पर धन्दा
 हो बकि एक ही संवह में विभिन्न प्रकार
 की कविताओं की बावें तो बनका अनुनाद
 हो लकि इनकी एक रूपरे के परिच्छेप में
 समझा जा सके । जैसे पहले पर के लिये
 ऐसा संवह कोई विलेप अनुचित नहीं ।

—गीता बदनापर

★ सुवि-सकनी के तीर मखि
 मजुकर 'मीर रो धोकर ही लही मुन्हे
 बिल्ली बन पाई है कन्धी-पक्की कवन
 काटकर मैंने एक जगह बुझाही है—वीर
 लिल-मजुकर की इस कन्धी पक्की फसल
 मुनि सपनों के तीर) में बही मानक है
 रो प्रपुन को ककबी पक्की पनाह की
 स्वत में होता है । 'हर करम पर संकड़ों
 म बाड़ने वाला यह भाकुङ पुषक कवि
 रक्षण को प्यारी तुलनाहर को सभेते धाने
 बापे कन के प्रति नई धारनाओं के सकेत
 देता है—'वीर सुत्र मोहताक बीने के लिये ।

प्रस्तुत पुस्तक का कवि अपने धाम
 को दर्शन रहा है । धाधा-निपटा भीठ
 हार ना एक विषय सा पाता है, वह
 अपने में । कभी तो उसे अपने धाम पर
 इतना विवकास होता है कि वह ना उठता

है-मीर कभी उसे अपने प्रति एक बिरलि
 येते धतमय मर धानि का सबमा पहुँचा
 है बहार को
 मजुबन बाले रीज रोड धरनम से मुझे
 सवार रहे हैं ।
 ही होने सपती है ।

मेरा नाम छपा या जिसमें वह
 कासम बदनाम हो गया' । कहना न होगा
 कि यम की यह प्रतिरवणता कवि के
 इरादों को एक नया दल सा दे रही है ।

गीतों में मजुकर ने नयी अभिव्यक्ति
 देने का प्रयास किया है । पना, वाली को
 'कमली पिय की प्यारी पतिहारिन' व पीर
 को 'विचवा मनिहारिन' की रूपमा देता
 तथा धाम को घटती धामार्थी के लिये
 'बिरझों से डर कर ज्ञामाये पसर बली
 बिपरीत कहना कितना प्यारा लगता है ।

गीतों के धरिचित्त पुस्तक में मुत्त-
 धेर की कविताओं व मुत्तक भी है । कहना
 न होगा कि मुत्तधेर में कवि कहीं अधिक
 कमल है । गीतों में तो कहीं-कहीं वह
 सधमुष ही धरों में बंध गया है । पीर
 लसने इसे स्वीकार भी है—'मेरा बजाय
 पकर मजुरक है धरों की बस्ती में । मुत्त
 धेर की कविताओं में 'सम्बोपन तील'
 'धंभरे में पाठ-पाठ' धारि कविताओं में
 अभिव्यक्ति कहीं अधिक सुलभ हुई है ।

राजस्थानी कवि की अपनी भाषा
 है । यत्र अनुसूति की पकड़ मीर धामि
 ध्यक्ति को सम्पूर्णता राजस्थानी गीतों में
 बहुत जगह देनेके को दिखती है ।

मजुकर की यह पहनी इति धामि

बाकी कृतियों के प्रति आधाबान बनाती है ।
—रवि-अ

पर सुख रद्द जाती है तब किछोर, (पृ० ७२ मु० २२ न १०) नई कविता नये वीरों के म्यम्पानी बिस्तार में जब 'पर सुख रद्द जाती है' की सुख कानों में पड़ी तो अन्तरगत मन को खंद-बखंद वीरों का ही बोध हुआ लेकिन जब पुस्तक खोली, पन्ने पलटे तो स्तम्भित हो गया बोध के विपरीत प्रमुद्रुषि तभी बंद को धाब के बजने वाले नंदकिचोर की की आकाश कानों के प्रसंग को छूने लगी थींको मत्त ऐसा भी होता है । वास्तव में ऐसा होता भी है कि प्रकथित परम्परा के तीव्र प्रभाव में अनेकानेक भीमंत तारु सूट जाते हैं धीरे-धीरे-धीरे तो तपस का बर बहसत उन्हें स्वर्ण करना भी सूट जाता है लेकिन जिनमें जीम की उत्सक है वे सम्पूर्ण विभिन्नताओं बाधाओं एवं अंतर्गतियों के समूह में भी अपनी आस्था में मुकुरित हो ही जाते हैं । प्राकृतिक हिन्दी साहित्य में (स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य) 'मत्त-भीत' विधा की स्तिपति ऐसी ही तन्मयनी बाहिए हुने जिने वो बार नीतकार हैं जिनकी लम रंता के सहारे हमारे साहित्य की यह विधा अब भी अपनी स्वस्थ परम्परा के साथ भी रही है । पर सुख रद्द जाती है के कवि नंदकिचोरजी ऐसे ही एक नीतकार हैं

जो नई कविता के अर्कांठि प्रभाव से ।
बस में काव्य सिखने का साहसिक क
कर रहे हैं ।

अन्ततः प्रेम की अत्यन्त से जन्म में हुए कर गायी प्रकृति के साथ विगत-शु को कृप्य राधा के विर पावन प्रेम-मिल के आनन्द से अभिव्यक्त कर रहे हैं—राज को कागहा पिता कागहा को राधा विभं अत्यन्त बोरो घोर प्राति का सुख, वा अत्यन्तगत जीवन में अनुभव्य प्रसन्न । अत्यन्त बर्ष की उत्पीर दिखाना भी नई चाहते बिसाई नहीं की जाती है—अ की उत्पीर दिखलाई नहीं जाती—अ सुख रद्द ही जाती है ।

अब-तब कवि बरती के मोह के आर्किक अभिमानित हैन का आवाज प्रयास भी करता है धीरे-धीरे-धीरे-धीरे की आस्था प्रेम नुला बर्ष की बीस सँजोके सुकियां भी रुक जाता है लेकिन अपने पूर्ण विरवास के साथ 'कोई माने न माने पर से मानता है मेरे हुने वीर से बर्षों साधों वीर ।

प्रेम वीर नर गायक यह कवि केव अ प्रेम प्रकृत तत्वों का अर्पाटन करना ही जीवन का कोब नहीं समझता । जीवन का अर्कांठि अलका संवर्ष जब सामने मुह बाये पाया है तो अपने हवाठी कलेजे एवं कोबारी पंजों से उत्सवा साथना करता

है पीछे नहीं हटता मने ही अपने को
 बोन का पुनरा क्यों न करे ? "मोह
 होना है पर राही नुकते नहीं क्यों मे अपने
 शोक पाते नहीं भुटा पाते नहीं" । क्योंकि
 संघर्ष में जीने की वास्ता है ।

जीवन का बहुत पर्याय मानवीय
 मायुहता को माना जाता है । बांगुरी के
 स्वर और कोयल की दूक जीवन में
 बहुत कुछ धरें रखती तो है ही लेकिन
 रोटी की मूख और मीस की चीटी जहाँ
 बजी जगी कि पयिक सब कुछ मूम-भाल
 कर नाक की छीय जलता ही जाता
 बिना रहे कोयल और बांगुरी की
 मधुरता मरी मनुहारों की अपेक्षा करते
 हुए । लकनन के द्वितीय खंड में जीवन
 की मसलतियों एवं विषमताओं को बड़े
 ही नाटकीय रूप से प्रस्तुत किया है ।
 धर्म की बढ़ती हुई महत्ता एवं धर्मने
 पीपियों की स्थिति को कवियों व्यक्त करता
 है । "बुनिया को मोसाई पेसे की मोसाई"
 "कोई कथ है मरुत की बकेली ईंट पर ।

सुहृद प्रतीक योचना एवं भावानुसृत
 माना की सख्य बोनमम्यता सकनित
 धीरों को सबसे बड़ी बियोगता है जिसने
 "पर पूज रख पायी है" को इस बिधा
 की (मध-मीत) की महती उपमनिक
 प्रमाणित कर दिया है । हाँ, कहीं कहीं

कवि बर्चन के मोह एवं संगीत के बहुत
 मटकाम में मटक धबधप गया है पर
 सतकता का छोड़ता कहीं भी नहीं है ।
 व्यक्ति के इस उनेलित मायम को
 अपनाकर इस तरह नीतकार के भी
 साहस किया वह नई कविता की इस बाढ़
 में बढ़ने वाले पच्छे से पच्छे कवियों के
 लिये भी एक साहित्यिक चुनौती है ।

कवि और मुखरित-प्रसर हो कर
 साहित्य की इस बिधा-मध-मीत की
 सम्पन्नता के बहुत समीन पहुँचाने का
 प्रयत्न करे यही इन पंक्तियों के लेखक
 को माना है ।

—सरल

★ हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत
 सं लेखक सुमन (पृ १५४ पृ १००
 न वे) प्रेमगीत प्रत्येक कवि के कवि
 जीवन की प्रथम रचना होती है । कवि
 अपना लेखन-काल प्रेमगीत से ही प्रारम्भ
 करता है । अन्य प्रेरणादायक अनुभूतियों
 में से प्रेम-अनुभूति भा एक ऐसी विविष्ट
 अनुभूति है जो व्यक्ति की विचन के
 लिये प्रेरणा देती है । वह परम्परा केवल
 हिन्दी भाषा में ही लागू नहीं होती बल्कि
 प्रत्येक बलाकार का यही इतिहास है । इसके
 घटितरित हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत'
 पुस्तक की तालिका में नगेन्द्र की सख्य

शरद, धर्मवीर, भारतीय पारि लोचकों के
 नाय देख कर अपूर्णत कबल घोर भी
 प्रमाहित सिद्ध होता जान पड़ता है ।
 परन्तु युग के बबलते हुए परिवेश को देखते
 हुए मात्र प्रेम गीतों का यह मूल्य नहीं
 वैसा धर्म युगों में रहा होगा । इस प्रकार
 धार्मिक युग की नवीन माध्यमों के
 मध्य 'सुनीती' स्वरूप 'धर्मधर्म सुमन'
 का संकलन हिन्दी के सबभेद प्रेमगीतों
 जनकी साहित्यिक कृति का प्यसंत प्रमाण
 है । सनका प्रयास सहायकृति का
 योग्य है ।

प्रत्येक हृदय की प्रेमनिष्पत्ति
 मिस भिन्न होती है । प्रेम का धारणन
 क्विती की जिनगी में नवबहार लाता
 है क्विती के जीवन में प्रेम के धामधम
 के साथ ही साथ पतन्य या जाता है ।
 पदाहरणस्वरूप एक घोर "केदारनाथ
 धरनाथ" लिखते हैं — मात्र बसन्त
 बिलास-हास है, जपन है सरसीने
 क्विती घोर "तारा पाण्डेय" लिखती हैं
 "संघ्या की कैना यह सुनी धाकुसता
 जाती हुनी ।' संयोग एवं वियोग
 न के ही दो पदा हैं । दुन्हें बांध पाती
 अपने में" (महादेवी बर्मा) या "संघ्या
 क्या निरा रवि घटि घी अनुपति
 बंधन में बसते हैं" (उरबधकर मट्ट)

या "दुमको बांध चुकी हैं मन में"
 (तारा पाण्डेय) । बिरह प्रेम की सबकी
 कवीटी है । इसके साथ साथ बिरह की
 धर्मनिष्पत्ति का सबसे सरल माध्यम है
 धार्मिकों का बहना— "मात्र मेरे धार्मिकों
 में मात्र किसकी मुस्कुराई?" (उषाप्रताप
 'धरक') या 'मेरे गीत क्विती पाठों पर
 बके हुए दो धार्मिक बस है (विरिजाकुमार
 माधुर) अपूर्णत लघन गीतों के
 धर्मनिष्पत्त कुल घोषणे एवं प्रमाण मात्र
 गीतों का भी इस पुस्तक में समावेश
 हो गया है । लगभग पुनारिपा निष्प
 है— मेरे बेबरी परदेसी तुने धर
 प्रीत निभाई बैरी तुमको मात्र न धरि
 (लगभग पुनारिपा) । इस प्रकार के गीत
 हिन्दी गीत-साहित्य को किस दिशा की
 घोर प्रेरित करते कहना कठिन है ।

इन सब के बावजूद नवीनयुग
 युग का भीत सद्यपि रीति का
 प्रमुख घोर को पढ़ते हुए जान पड़ता है
 धर्मनत नवधर्म बर्णन इस पर भी
 भीत में धरनीसता एवं विधायन के
 स्थान पर स्वभ्यता की महक घाटी है ।
 "यह बंधन सा बांध महकता यह
 बाँधी ही रात" धर्मनतोंबर्ना 'सुमन
 की का प्रमत्त संकलन पठनीय है ।
 —कुर्ना बाहेर

